मंजरी
स्त्री के मन की
RNI Title Code: BIHBIL02442
www.emanjari.com

अंक 34 सितम्बर, 2026

होममेकर नहीं,

नेशन बिल्डर कहिए जनाब!

भारतीय गृहिणियां : भारतीय अर्थव्यवस्था में गुमनाम योगदानकर्ता

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है 'मंजरी'।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी कोशिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवेदनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामाजिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में पूरी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साहित किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके।

समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेहद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

संरक्षण

प्रो. किरण घई
हिंदी विभाग की भूतपूर्व रीडर
पटना वीमेंस कॉलेज

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास,
पटना विश्वविद्यालय

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाजशास्त्र
पटना विश्वविद्यालय

परामर्श

डा. शरद कुमारी
पूर्व महासचिव
बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
स्वतंत्र लेखिका एवं शोधकर्ता

सुजाता गुप्ता
लेखिका, कवयित्री एवं
अनुवादक

संपादकीय

घरेलू श्रम समकालीन समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और नारीवादी विमर्श का एक केंद्रीय विषय है। परंपरागत अर्थशास्त्र में उत्पादन को मुख्यतः बाजार में होने वाली आर्थिक गतिविधियों तक सीमित रखा गया, जिसके कारण घर के भीतर किए जाने वाले श्रम को राष्ट्रीय आय, सकल घरेलू उत्पाद (GDP) तथा श्रम–सांख्यिकी में पर्याप्त स्थान नहीं मिल सका। परिणामस्वरूप, घरेलू श्रम जिसका अधिकांश भाग महिलाओं द्वारा किया जाता है, आर्थिक दृष्टि से अदृश्य (Invisible Labour) बना रहा। आज यह प्रश्न केवल आर्थिक प्रतिफल का नहीं, बल्कि मान्यता (Recognition), न्याय (Justice), समानता (Equality) और सामाजिक पुनर्वितरण (Redistribution) का विषय बन चुका है।

नारीवादी अर्थशास्त्र का तर्क है कि घरेलू श्रम का अवमूल्यन पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना और पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के अंतर्संबंध का परिणाम है। सिल्विया फेडेरिची (Silvia Federici), नैन्सी फोल्बर (Nancy Folbre) और मैरिलिन वारिंग (Marilyn Waring) जैसी विद्वानों ने यह प्रतिपादित किया है कि घर के भीतर किया जाने वाला देखभाल कार्य (Care Work) और पुनरुत्पादक श्रम (Reproductive Labour) वस्तुतः अर्थव्यवस्था की आधारशिला है। यदि परिवार में भोजन तैयार न हो, बच्चों का पालन–पोषण न हो, बुजुर्गों की देखभाल न हो तथा श्रमिकों के श्रम–बल का दैनिक पुनरुत्पादन न हो, तो औपचारिक अर्थव्यवस्था का संचालन भी संभव नहीं होगा। इस दृष्टि से घरेलू श्रम स्वयं उत्पादन प्रक्रिया की पूर्वशर्त (Precondition of Production) है।

भारतीय संदर्भ में यह विमर्श और अधिक प्रासंगिक हो जाता है। भारत में महिलाओं की श्रम–बल भागीदारी दर अपेक्षाकृत कम दिखाई देती है, किंतु इसका एक प्रमुख कारण यह है कि घर के भीतर किया जाने वाला उनका विशाल श्रम औपचारिक श्रम की श्रेणी में नहीं गिना जाता। राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) के समय–उपयोग सर्वेक्षण (Time Use Survey) से स्पष्ट होता है कि महिलाएँ प्रतिदिन पुरुषों की तुलना में कई गुना अधिक समय अवैतनिक घरेलू कार्यों तथा देखभाल संबंधी गतिविधियों में व्यतीत करती हैं। यह तथ्य दर्शाता है कि महिलाओं का आर्थिक योगदान वास्तविकता में कहीं अधिक व्यापक है, जितना कि पारंपरिक आर्थिक आँकड़े प्रदर्शित करते हैं।

घरेलू श्रम के लिए आर्थिक प्रतिफल की माँग के पक्ष में पहला तर्क मान्यता के सिद्धांत (Politics of Recognition) पर आधारित है। दार्शनिक ऐक्सेल होनेथ के अनुसार, सामाजिक सम्मान और मान्यता व्यक्ति की गरिमा तथा नागरिकता के लिए आवश्यक हैं। जब घरेलू श्रम को आर्थिक और सामाजिक मान्यता नहीं मिलती, तब महिलाओं के योगदान का अवमूल्यन होता है और उनके श्रम को स्वाभाविक कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। आर्थिक प्रतिफल इस अदृश्य श्रम को सार्वजनिक स्वीकृति प्रदान करने का माध्यम बन सकता है।

हमारी बात

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

आवरण चित्र

वरिष्ठ अतिथि कलाकार
अनु प्रिया

लोगो डिजाइन

दीया भारद्वाज

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार
कुमार गौरव

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612.2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

दूसरा तर्क आर्थिक न्याय (Economic Justice) से जुड़ा है। अमर्त्य सेन की क्षमता दृष्टि (Capability Approach) के अनुसार, विकास का वास्तविक उद्देश्य लोगों की क्षमताओं और विकल्पों का विस्तार करना है। जिन महिलाओं की अपनी स्वतंत्र आय नहीं होती, वे प्रायः आर्थिक निर्भरता, निर्णय–निर्माण में सीमित भागीदारी तथा संसाधनों तक असमान पहुँच जैसी समस्याओं का सामना करती हैं। घरेलू श्रम का आर्थिक मूल्यांकन महिलाओं की आर्थिक स्वायत्तता और सामाजिक सुरक्षा को सुदृढ़ कर सकता है।

हालाँकि, इस प्रस्ताव के समक्ष कुछ गंभीर व्यावहारिक और वैचारिक चुनौतियाँ भी हैं। सबसे पहली चुनौती यह है कि घरेलू श्रम का मूल्यांकन किस आधार पर किया जाए। क्या इसका मूल्य बाजार में उपलब्ध समान सेवाओं (Replacement Cost Method) के आधार पर निर्धारित होगा, या उस आय के आधार पर जिसे महिला बाहर कार्य करके अर्जित कर सकती थी (Opportunity Cost Method)? इसके अतिरिक्त यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि भुगतान की जिम्मेदारी किसकी होगी– राज्य की, परिवार की या किसी अन्य संस्था की? इन प्रश्नों का कोई सर्वमान्य समाधान अभी तक उपलब्ध नहीं है।

कुछ नारीवादी विद्वानों ने यह आशंका भी व्यक्त की है कि यदि घरेलू श्रम के लिए केवल वेतन की व्यवस्था की जाती है, तो इससे महिलाओं की पारंपरिक घरेलू भूमिका और अधिक स्थायी हो सकती है। इसके विपरीत, अन्य विद्वानों का मत है कि आर्थिक मान्यता का उद्देश्य महिलाओं को घर तक सीमित करना नहीं, बल्कि उनके कार्य के वास्तविक मूल्य को स्वीकार करना है। इसलिए केवल वेतन पर्याप्त नहीं होगा, इसके साथ घरेलू कार्यों का लैंगिक पुनर्वितरण (Gender Redistribution), गुणवत्तापूर्ण सार्वजनिक देखभाल सेवाओं का विस्तार, सामाजिक सुरक्षा तथा समान अवसरों की नीतियाँ भी आवश्यक हैं।

भारतीय न्यायपालिका ने भी घरेलू श्रम के आर्थिक मूल्य को स्वीकार करने की दिशा में महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ की हैं। विशेष रूप से भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने मोटर दुर्घटना मुआवजे से जुड़े मामलों में गृहिणियों के घरेलू कार्यों के आर्थिक मूल्य को मान्यता देते हुए यह स्पष्ट किया कि गृहिणी का श्रम अमूल्य है और उसे शून्य आर्थिक योगदान के रूप में नहीं देखा जा सकता। यह दृष्टिकोण घरेलू श्रम की संस्थागत मान्यता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना जाता है।

अंततः, महिलाओं के घरेलू श्रम का प्रश्न केवल वेतन अथवा पारिश्रमिक का प्रश्न नहीं है। यह सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता, आर्थिक नागरिकता और लोकतांत्रिक मान्यता का प्रश्न है। समकालीन नारीवादी अर्थशास्त्र इस बात पर बल देता है कि घरेलू श्रम को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की परिधि से निकालकर उसके केंद्र में स्थापित किया जाए। अतः आवश्यक है कि घरेलू श्रम का व्यवस्थित मूल्यांकन किया जाए, उसे सार्वजनिक नीतियों में स्थान दिया जाए, सामाजिक सुरक्षा उपायों से जोड़ा जाए तथा घरेलू उत्तरदायित्वों के अधिक न्यायसंगत वितरण को प्रोत्साहित किया जाए। तभी महिलाओं के श्रम को वास्तविक अर्थों में सम्मान, अधिकार और न्याय प्राप्त हो सकेगा।

Nsrivastava

नीना श्रीवास्तव

अनुक्रम

5

15

8

18

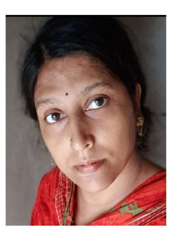

अनु प्रिया
(कलाकार/लेखिका)

सुपौल बिहार में जन्मीं अनु प्रिया जी के साठ से अधिक किताबों के आवरण एवं पत्र–पत्रिकाओं में रेखाचित्र प्रकाशित हो चुके हैं। साहित्य अकादमी, राजकमल प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, अल्टरनोट प्रकाशन, अगोर प्रकाशन, प्रकाशन विभाग आदि से किताबों के आवरण पर निरंतर इनके द्वारा बनाये गए चित्र का प्रकाशन होता रहता है।

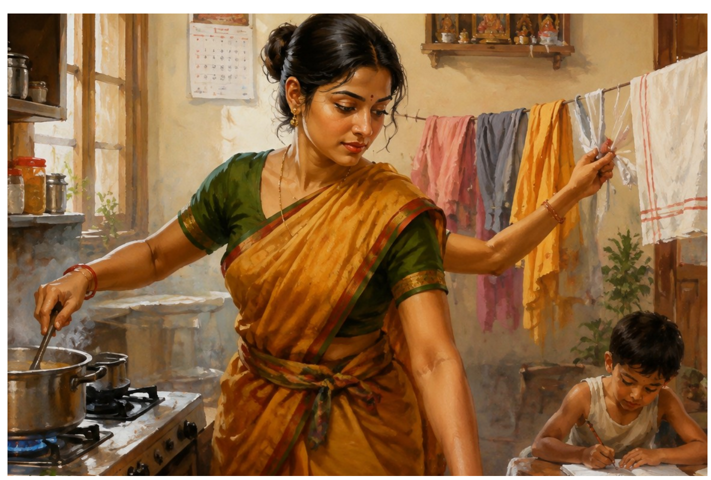

25

थीम पेपर

गृहिणी : एक आर्थिक इकाई

क्या 'शिशु पाल उर्फ शीश राम बनाम सुरजीत' मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधिक दृष्टिकोण परिवार न्यायालयों के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत हो सकता है?

डॉ मीता मोहिनी

अधिवक्ता एवं सीएनएलयू फैकल्टी

'द लंचबॉक्स' फिल्म का एक दृश्य

1. प्रस्तावना

25 नवंबर 2001 को सिरसा/फतेहाबाद मार्ग पर तेज एवं लापरवाही से चलाए जा रहे वाहन की चपेट में आने से एक महिला की मृत्यु हो गई। प्रथमदृष्टया, 'शिशु पाल उर्फ शीश राम बनाम सुरजीत' प्रकरण एक मोटर–दुर्घटना प्रतिकर का मामला प्रतीत होता है। किंतु 11 जून 2026 का यह निर्णय अपने व्यापक विधिक प्रभाव के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है। सर्वोच्च न्यायालय ने अवैतनिक घरेलू श्रम एवं सेवाओं को न केवल आर्थिक मूल्य प्रदान किया, बल्कि उन्हें विधिक मान्यता भी दी।

निर्णय में प्रतिपादित दृष्टिकोण का महत्व केवल मोटर–दुर्घटना प्रतिकर तक सीमित नहीं है। इसका मूल आधार यह है कि परिवार के भीतर गृहिणी द्वारा किए जाने वाले अवैतनिक घरेलू श्रम, देखभाल तथा पारिवारिक प्रबंधन का वास्तविक आर्थिक मूल्य होता है।

2. गृहिणी का घरेलू श्रमः आर्थिक योगदान

मृतका गृहिणी थीं और उनकी कोई पारंपरिक मौद्रिक आय नहीं थी। इसके बावजूद न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि गृहिणी का घरेलू श्रम अदृश्य अथवा मूल्यहीन कार्य नहीं है। गृह–व्यवस्था, घरेलू कार्यों का निष्पादन, परिवार के सदस्यों की देखभाल, बच्चों का पालन–पोषण, संरक्षण तथा पारिवारिक जीवन का सुचारू संचालन– ये सभी ऐसे कार्य हैं जिनका आर्थिक मूल्य है।

गृहिणी का योगदान केवल परिवार तक सीमित नहीं रहता। बच्चों के पालन–पोषण, शिक्षा, संस्कार एवं देखभाल तथा परिवार के समग्र विकास में उसकी भूमिका सामाजिक संरचना और व्यापक रूप से राष्ट्र–निर्माण में योगदान करती है। इसलिए गृहिणी को केवल "हाउसवाइफ" अथवा "गृहकार्य करने वाली महिला" के रूप में देखना उसके वास्तविक आर्थिक एवं सामाजिक योगदान को कमतर आँकना होगा। गृहिणी पति–पत्नी के मध्य वैवाहिक सहचर्य (consortium), पारस्परिक सहयोग तथा पारिवारिक जीवन के संचालन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अतः उसके घरेलू श्रम और सेवाओं को विधिक मूल्य से रहित मानना वास्तविकता से परे होगा।

3. घरेलू श्रम का मौद्रिक मूल्य

सर्वोच्च न्यायालय ने मोटर–दुर्घटना प्रतिकर की गणना के संदर्भ में गृहिणी द्वारा किए जाने वाले अवैतनिक घरेलू कार्यों और सेवाओं के आर्थिक मूल्य को ध्यान में रखते

हुए 30,000 रूपए प्रति माह का न्यूनतम मौद्रिक मूल्य निर्धारित किया है। यह दृष्टिकोण इस मूल सिद्धांत पर आधारित है कि किसी कार्य से प्रत्यक्ष मौद्रिक आय उत्पन्न न होने मात्र से उसका आर्थिक मूल्य समाप्त नहीं हो जाता।

न्यायालय ने इस संदर्भ में सर सेसिल पिगू की वर्ष 1920 में प्रकाशित The Economics of Welfare का उल्लेख किया, जिसमें पत्नियों एवं माताओं द्वारा निःशुल्क प्रदान की जाने वाली घरेलू सेवाओं के राष्ट्रीय आय की गणना में सम्मिलित न किए जाने की ओर संकेत किया गया था।

न्यायालय ने राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय के वर्ष 2019 के Time Use Survey का भी उल्लेख किया। इसके अनुसार 15–59 वर्ष की आयु की महिलाएँ प्रतिदिन सात घंटे से अधिक समय अवैतनिक घरेलू कार्यों में व्यतीत करती हैं, जबकि पुरुष तीन घंटे से कम समय देते हैं। महिलाएँ पुरुषों की तुलना में लगभग 2.6 गुना अधिक अवैतनिक देखभाल–संबंधी कार्य करती हैं। महिलाओं के इस अवैतनिक देखभाल–संबंधी कार्य के आर्थिक योगदान को भारत के GDP के लगभग 15–17 प्रतिशत के समतुल्य आँका गया है। इस प्रकार, घरेलू श्रम भले ही प्रत्यक्ष आय उत्पन्न न करे, किंतु वह परिवार और अर्थव्यवस्था के लिए वास्तविक आर्थिक मूल्य रखता है।

4. विधिक एवं सामाजिक मान्यता

सर्वोच्च न्यायालय ने महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव के उन्मूलन संबंधी समिति (Committee on the Elimination of Discrimination against Women) की उस सिफारिश का भी उल्लेख किया, जिसमें महिलाओं द्वारा किए जाने वाले अवैतनिक घरेलू कार्यों के मापन एवं आर्थिक मूल्यांकन तथा उनके आर्थिक योगदान को राष्ट्रीय लेखा–प्रणाली में उचित मान्यता देने पर बल दिया गया है।

लंबे समय तक यह धारणा प्रचलित रही कि गृहिणी "काम नहीं करती" और उसके द्वारा किया गया घरेलू श्रम केवल भावनात्मक अथवा पारिवारिक दायित्व है। न्यायिक दृष्टिकोण में अब इस धारणा का महत्वपूर्ण पुनर्मूल्यांकन हुआ है। गृहिणी का श्रम परिवार के अस्तित्व, संचालन और कल्याण के लिए आवश्यक है और इसलिए उसका आर्थिक मूल्यांकन किया जाना न्यायसंगत है।

गृहिणी के घरेलू कार्यों की तुलना किसी घरेलू कामगार द्वारा पारिश्रमिक के बदले सीमित अवधि में प्रदान की जाने वाली सेवाओं से करना उचित नहीं है। गृहिणी का योगदान निरंतर, बहुआयामी और परिवार के संपूर्ण जीवन–चक्र से संबद्ध होता है।

5. 'Loss of Domestic Care' की अवधारणा

सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी स्वीकार किया कि गृहिणी की मृत्यु से केवल आय का संभावित स्रोत समाप्त नहीं होता, बल्कि परिवार को उसकी निरंतर देखभाल, संरक्षण, स्नेह, घरेलू सेवाओं और व्यक्तिगत ध्यान से होने वाली क्षति भी होती है। इस क्षति को "Loss of Domestic Care" (घरेलू देखभाल की क्षति) के रूप में स्वतंत्र रूप से समझना आवश्यक है। गृहिणी की मृत्यु के परिणामस्वरूप पति, बच्चों और अन्य आश्रितों को होने वाली ऐसी क्षति का मौद्रिक मूल्यांकन कठिन अवश्य है, किंतु केवल कठिनाई के कारण उसे विधिक दृष्टि से अदृश्य नहीं किया जा सकता।

इसी कारण गृहिणी के घरेलू कार्यों की तुलना किसी घरेलू कामगार द्वारा पारिश्रमिक के बदले सीमित अवधि में प्रदान की जाने वाली सेवाओं से करना उचित नहीं है। गृहिणी का योगदान निरंतर, बहुआयामी और परिवार के संपूर्ण जीवन–चक्र से संबद्ध होता है।

6. प्रतिकर विधि से भरण–पोषण विधि तक

यहीं से एक महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न उत्पन्न होता है– क्या शिशु पाल उर्फ शीश राम बनाम सुरजीत में प्रतिपादित सिद्धांत परिवार न्यायालयों के लिए भी मार्गदर्शक हो सकता है?

यह निर्णय मृत गृहिणी के घरेलू श्रम का आर्थिक मूल्य निर्धारित करने के संदर्भ में दिया गया है। किंतु जिस मूल विधिक सिद्धांत पर यह निर्णय आधारित है– अर्थात् अवैतनिक घरेलू श्रम का वास्तविक आर्थिक मूल्य होना– वह केवल मृत्यु के पश्चात् प्रतिकर के निर्धारण तक सीमित क्यों रहे?

परिवार न्यायालय जब भरण–पोषण, गुजारा भत्ता अथवा विवाह–विच्छेद के पश्चात् alimony निर्धारित करता है, तब जीवित गृहिणी के घरेलू श्रम, पारिवारिक प्रबंधन, बच्चों की देखभाल तथा परिवार में उसके आर्थिक योगदान को भी ध्यान में रखना आवश्यक प्रतीत होता है। यदि विधि किसी मृत गृहिणी के घरेलू श्रम का मूल्य 30,000 रूपए प्रति माह निर्धारित कर सकती है, तो यह गंभीर विचारणीय प्रश्न है कि उसी आर्थिक वास्तविकता को जीवित गृहिणी के भरण–पोषण अथवा गुजारा भत्ता निर्धारित करते समय पूर्णतः अप्रासंगिक कैसे माना जा सकता है।

7. क्या दो विधिक कार्यवाहियों में भिन्न दृष्टिकोण न्यायसंगत है?

मृत गृहिणी के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने उसके अवैतनिक घरेलू श्रम को आर्थिक मूल्य प्रदान किया है। दूसरी ओर, परिवार न्यायालयों के समक्ष जीवित गृहिणी के भरण–पोषण अथवा गुजारा भत्ता निर्धारण में

उसके घरेलू श्रम का प्रत्यक्ष आर्थिक मूल्यांकन सामान्यतः दिखाई नहीं देता।

यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है– क्या एक ही विधि–व्यवस्था में मृत गृहिणी के घरेलू श्रम को आर्थिक मूल्य प्रदान करना और जीवित गृहिणी के उसी श्रम को भरण–पोषण के निर्धारण में नगण्य मानना विधिसंगत एवं न्यायसंगत हो सकता है?

यदि गृहिणी का श्रम आर्थिक रूप से मूल्यवान है, तो उस मूल्य की विधिक मान्यता उसके जीवनकाल में भी उसके अधिकारों के निर्धारण में परिलक्षित होनी चाहिए।

8. परिवार न्यायालयों के लिए संभावित मार्गदर्शक सिद्धांत

मोटर–दुर्घटना प्रतिकर के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने गृहिणी के घरेलू श्रम के मूल्यांकन के लिए उदार एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। इसी प्रकार परिवार न्यायालयों को भी भरण–पोषण एवं गुजारा भत्ता निर्धारित करते समय गृहिणी के घरेलू श्रम को केवल "आय–विहीन" स्थिति के रूप में नहीं देखना चाहिए।

भरण–पोषण निर्धारण में निम्नलिखित कारकों पर विचार किया जाना अपेक्षित हो सकता है–

–गृहिणी द्वारा किए जाने वाले नियमित घरेलू कार्य

–बच्चों एवं अन्य आश्रितों की देखभालय

–परिवार के घरेलू प्रबंधन में उसका योगदान

–पति की आय अर्जित करने की क्षमता में उसके घरेलू योगदान की भूमिका

–उसके द्वारा त्यागे गए रोजगार अथवा आय–अवसर

–परिवार के जीवन–स्तर को बनाए रखने में उसका योगदान तथा

–घरेलू श्रम और देखभाल के स्थान पर बाजार से समान सेवाएँ प्राप्त करने की संभावित लागत।

ऐसा दृष्टिकोण भरण–पोषण को केवल पति की आय से संबंधित गणितीय निर्धारण के बजाय वास्तविक पारिवारिक आर्थिक संरचना के संदर्भ में देखने में सहायता कर सकता है।

9. विलंब और न्याय का उद्देश्य

सर्वोच्च न्यायालय ने मोटर–दुर्घटना प्रतिकर के मामलों के शीघ्र निस्तारण की आवश्यकता पर भी बल दिया है। भरण–पोषण एवं गुजारा भत्ता संबंधी कार्यवाहियाँ भी कल्याणकारी विधि के उद्देश्यों को प्रभावी करने वाली कार्यवाहियाँ हैं। इसके बावजूद ऐसे मामले कभी–कभी वर्षों तक लंबित रहते हैं। दीर्घकालिक विलंब का सबसे गंभीर प्रभाव उस गृहिणी पर पड़ता है जिसके पास स्वतंत्र आय का स्रोत नहीं होता। यदि उसका घरेलू श्रम आर्थिक रूप से मूल्यवान है, तो न्यायिक प्रक्रिया में होने वाला अनावश्यक विलंब उसके आर्थिक अधिकारों की प्रभावशीलता को ही कम कर देता है।

10. निष्कर्षः गृहिणी केवल "निर्भर" नहीं, आर्थिक योगदानकर्ता है

शिशु पाल उर्फ शीश राम बनाम सुरजीत का महत्व इस बात में निहित है कि उसने गृहिणी के अवैतनिक घरेलू श्रम को विधिक दृष्टि से आर्थिक मूल्य प्रदान किया है। यह सिद्धांत यदि स्वीकार किया जाता है कि गृहिणी का श्रम आर्थिक मूल्य रखता है, तो उसकी मान्यता केवल उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रतिकर निर्धारण तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। जीवित गृहिणी के भरण–पोषण अथवा गुजारा भत्ता के निर्धारण में भी उसके घरेलू श्रम, देखभाल, पारिवारिक प्रबंधन और समग्र आर्थिक योगदान को उचित महत्व दिया जाना चाहिए। न्याय का तकाजा यही है कि जिस श्रम को विधि मृत्यु के पश्चात् आर्थिक मूल्य प्रदान करती है, उसे जीवनकाल में विधिक अधिकारों के निर्धारण के समय अदृश्य अथवा मूल्यहीन नहीं माना जा सकता।

अतः शिशु पाल उर्फ शीश राम बनाम सुरजीत में प्रतिपादित सिद्धांत परिवार न्यायालयों के लिए प्रत्यक्षतः बाध्यकारी न सही, किंतु भरण–पोषण एवं गुजारा भत्ता निर्धारण में गृहिणी के आर्थिक योगदान के मूल्यांकन हेतु एक महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक मार्गदर्शक सिद्धांत अवश्य हो सकता है। इससे विधि की उस मूल भावना को बल मिलेगा जिसमें समान परिस्थितियों में समान आर्थिक वास्तविकताओं का न्यायोचित मूल्यांकन अपेक्षित है। *गृहिणी का श्रम अवैतनिक हो सकता है, मूल्यहीन नहीं।*

सीधी बात

‘देवी’ का दर्जा नहीं, अधिकार चाहिए

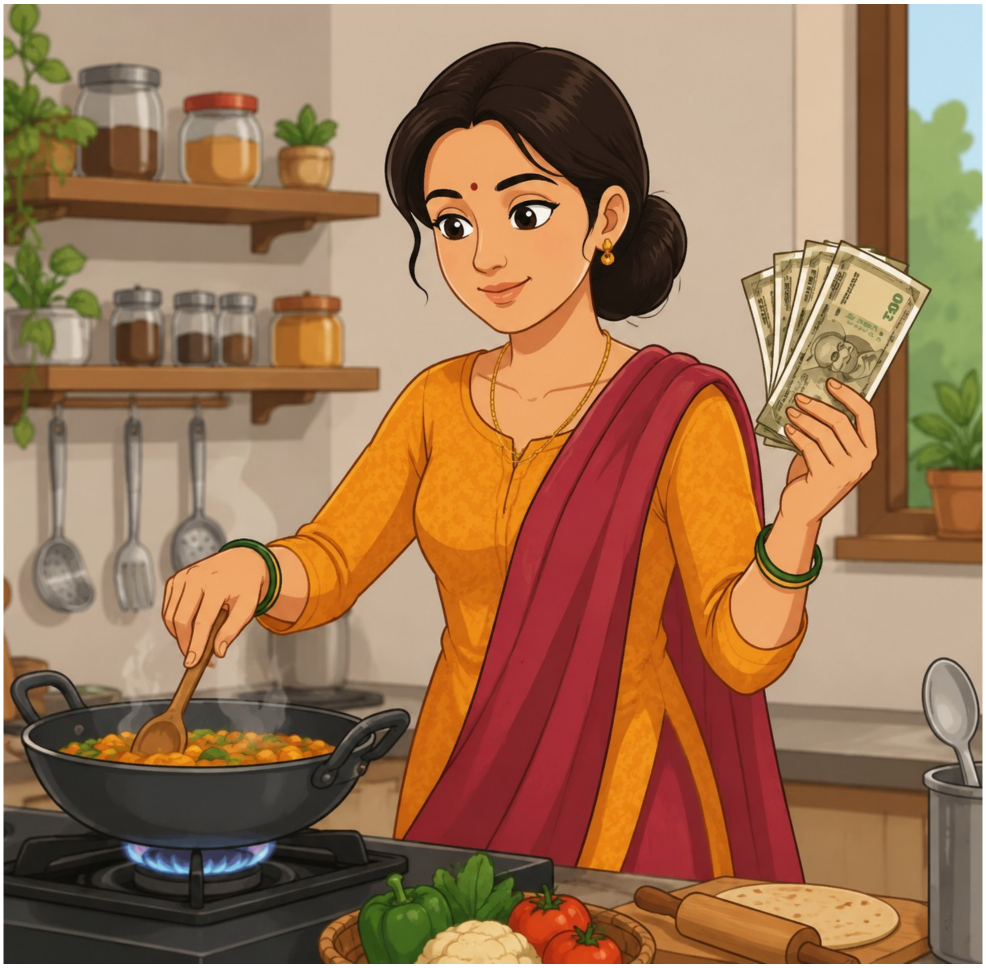

एक पत्नी जो ‘‘गृहिणी के रूप में परिश्रम करती है’’ वह अपने पति के नाम पर मौजूद संपत्ति में बराबर हिस्सेदारी की हकदार है, क्योंकि पति की बाहर जाकर कमाने की क्षमता घर पर उसके अवैतनिक श्रम पर निर्भर करती है।

इस सप्ताह, सुप्रीम कोर्ट ने गृहिणी के श्रम के मूल्य को न्यूनतम 30,000 रुपये प्रति माह तक सीमित कर दिया। न्यायमूर्ति संजय करोल और एनके सिंह की पीठ ने कहा कि सड़क दुर्घटना में गृहिणी की मृत्यु या अक्षमता के कारण परिवार को होने वाली ‘घरेलू देखभाल’ की हानि एक अलग क्षति है, जिसके लिए उचित मुआवजा मिलना चाहिए। अदालत ने अर्थशास्त्रियों द्वारा लंबे समय से प्रमाणित तथ्य को रेखांकित किया; महिलाओं द्वारा किया जाने वाला अवैतनिक देखभाल कार्य भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में अनुमानित 15–17% का योगदान देता है, फिर भी यह अनदेखा बना रहता है। पीठ ने गृहिणियों को ‘राष्ट्र निर्माता’ भी कहा– यह प्रशंसात्मक टिप्पणी मैं आगे फिर दोहराऊंगी।

यह फैसला भारतीय न्यायशास्त्र की प्रगतिशील धारा में एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जनवरी 2021 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कीर्ति बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस मामले में फैसला सुनाया कि दुर्घटना दावों में गृहिणी की काल्पनिक आय की गंभीरता से गणना की जानी चाहिए, और न्यायमूर्ति एन.वी. रमना ने टिप्पणी की कि यह लाखों महिलाओं के श्रम को मान्यता देता है। जून 2023 में, मद्रास उच्च न्यायालय ने इससे भी आगे बढ़कर फैसला सुनाया। न्यायमूर्ति कृष्णन रामासामी ने कन्नायन नायडू बनाम कमसला अम्माल मामले में फैसला सुनाया कि एक पत्नी जो ‘‘गृहिणी के रूप में परिश्रम करती है’’ वह अपने पति के नाम पर मौजूद संपत्ति में बराबर हिस्सेदारी की हकदार है, क्योंकि पति की बाहर जाकर कमाने की क्षमता घर पर उसके अवैतनिक श्रम पर निर्भर करती है। न्यायाधीश ने कहा कि उसका काम चौबीसों घंटे का है, जिसमें कोई छुट्टी नहीं मिलती– इसे पति के आठ घंटे के काम से कमतर नहीं आंका जा सकता।

इन निर्णयों के पीछे के आंकड़े चौंकाने वाले हैं। भारत के Time Use Survey से पता चलता है कि महिलाएं प्रतिदिन लगभग पांच घंटे अवैतनिक घरेलू काम में बिताती हैं, जबकि पुरुष मुश्किल से आधा घंटा ही खर्च करते हैं– यह दुनिया के सबसे असमान विभाजनों में से एक है। यह बोझ भारत में महिलाओं के

सीधी बात

स्वतंत्र दावा, विवाह के भीतर सौदेबाजी की शक्ति, और एक बुरे विवाह से बाहर निकलने का एक व्यवहार्य रास्ता।

अब, महिलाओं के सम्मान के बारे में। अदालतें और राजनेता, दोनों ही श्रद्धा की भाषा का सहारा लेते हैं। गृहिणियों को राष्ट्र निर्माता, माताओं को देवी, और घर को स्त्री का मंदिर बताते हैं। रूढ़िवादी आवा. जें महिलाओं को घर तक सीमित रखने को पवित्र ठहराने के लिए ठीक यही शब्दावली इस्तेमाल करती हैं। वे महिलाओं के इस ऊंचे स्थान का महिमामंडन करते हैं, और कोई यह नहीं पूछता कि वे इससे नीचे क्यों नहीं उतर सकतीं। महिलाएं देशभक्ति के कारण खाना नहीं बनातीं और घर की सफाई नहीं करतीं, वे ऐसा इसलिए करती हैं क्योंकि श्रम के असमान विभाजन के कारण उनके पास कोई और विकल्प नहीं बचता। ये निर्णय उन अधिकारों के लिए मायने रखते हैं जो वे प्रदान करते हैं– मुआवजा और संपत्ति में हिस्सेदारी– न कि उनके साथ आने वाली प्रशंसाओं के लिए।

सवैतनिक रोजगार में सबसे बड़ी बाधा है, और यह रोजगार में पुनः प्रवेश की शर्तों को निर्धारित करता है– देर से, कम वेतन पर।

जब कमल हासन की पार्टी ने 2021 के तमिलनाडु चुनावों से पहले 'गृहिणियों के लिए वेतन' का वादा किया था, तब मैंने इन पन्नों पर इस विचार का विरोध किया था। मेरा विरोध आज भी कायम है। घरेलू कामों के लिए मासिक वेतन– चाहे पति द्वारा दिया जाए या सरकार द्वारा– पुरुष प्रधान परिवार को एक निश्चित स्थिति मान लेता है और उसे अपरिवर्तनीय बना देता है। यह श्रम के अन्यायपूर्ण विभाजन को एक स्थायी नौकरी में बदल देता है। यह महिलाओं की निर्भरता को कम करने के बजाय और बढ़ाएगा। अधिकांश भारतीय घरों में, घर के माध्यम से दिया जाने वाला वेतन महिला के अपने नियंत्रण में नहीं होगा। और यह असली मुद्दे– यानी पुरुषों द्वारा काम में हिस्सेदारी– के बारे में कुछ नहीं कहता।

तो क्या अदालतें वही कर रही हैं जिसका मैंने विरोध किया था? नहीं, और अंतर जेब खर्च और शक्ति के बीच का है। घरेलू काम के लिए मजदूरी देने से महिलाएं वहीं बनी रहेंगी जहां वे हैं। इसके बजाय, अदालतें अधिकारों का निर्धारण करते समय महिलाओं के अवैतनिक श्रम के मूल्य को पहचान रही हैं। मद्रास उच्च न्यायालय ने पतियों को अपनी पत्नियों को वेतन देने का आदेश नहीं दिया। उसने कहा कि घर, जमीन, और विवाह के दौरान जमा हुई बचत, पति के रोजगार और पत्नी के श्रम के संयुक्त उत्पाद हैं, और पत्नी उनमें से आधी की मालिक है। यह मजदूरी नहीं है– यह संपत्ति का अधिकार है। स्वामित्व महिलाओं को वह देता है जो वेतन कभी नहीं दे सकता। पति की सद्भावना से

सीमाएं भी स्पष्ट हैं। किसी महिला की दुर्घटना में मृत्यु होने पर या विवाह के मुकदमेबाजी में समाप्त होने पर ही मिलने वाली मान्यता विलंबित मान्यता है–जीवन भर के परिश्रम का मरणोपरांत मूल्यांकन। और जैसा कि न्यायमूर्ति रामासामी ने स्वयं कहा, अभी तक कोई भी भारतीय कानून वैवाहिक संपत्ति में पत्नी के योगदान को मान्यता नहीं देता है– वे ऐसा निर्णय दे सकते थे, लेकिन कोई अन्य न्यायाधीश ऐसा नहीं कर सकता।

यह एक अधूरा एजेंडा है। संसद को उस कार्य को संहिताबद्ध करना चाहिए जिसे न्यायालयों ने शुरू किया है। एक वैवाहिक संपत्ति कानून जो विवाह को एक समान आर्थिक साझेदारी के रूप में मानता है। वे महिलाएं जो पारिवारिक खेतों और व्यवसायों को चलाती हैं– भले ही उन्हें 'काम न करने वाली' के रूप में गिना जाता हो– उन्हें आय पर दावा करने वाली श्रमिक के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। बाल देखभाल और वृद्धावस्था देखभाल में सार्वजनिक निवेश से महिलाओं पर बोझ कम होना चाहिए, न कि उस पर अतिरिक्त लागत का बोझ डालना चाहिए।

अदालतों ने यह मानना छोड़ दिया है कि घरेलू काम केवल प्रेम का श्रम है जिसका कोई आर्थिक मूल्य नहीं है। हमारा काम इससे भी कठिन है– यह मानना बंद करना कि यह केवल महिलाओं का काम है। घरेलू काम का सबसे क्रांतिकारी मूल्यांकन किसी त्रासदी के बाद न्यायाधीश द्वारा तय की गई संख्या या सम्मान नहीं है– बल्कि यह है कि एक पति किसी आम मंगलवार को चुपचाप उसका आधा काम कर रहा हो।

(साभार : timesofindia.indiatimes.com में प्रकाशित अश्विनी देशपांडे के आलेख का हिन्दी अनुवाद)

सवाल

2021 में कमल हासन की पार्टी ने तमिलनाडु चुनावों से पहले 'गृहिणियों के लिए वेतन' का वादा किया था। एक प्रमुख सांसद ने इस विचार का स्वागत करते हुए कहा था कि इससे ''महिला गृहिणियों की सेवाओं का मौद्रिक मूल्य बढ़ेगा, उनकी शक्ति और स्वायत्तता में वृद्धि होगी'' और लगभग सार्वभौमिक बुनियादी आय का सृजन होगा।

यह एक बेहद महत्वपूर्ण बहस है, खासकर ऐसे समय में जब महिलाएं वेतनभोगी नौकरियों में पिछड़ रही हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार, दुनिया भर में महिलाएं अवैतनिक कार्यों में समय व्यतीत करती हैं– इराक में अधिकतम 345 मिनट प्रतिदिन से लेकर ताइवान में 168 मिनट प्रतिदिन तक। औसतन, पुरुष अवैतनिक देखभाल कार्यों में 83 मिनट व्यतीत करते हैं, जबकि महिलाएं उनसे तीन गुना अधिक यानी 265 मिनट व्यतीत करती हैं। तो क्या गृहिणियों को उन घरेलू कामों के लिए वेतन दिया जाना चाहिए जिनमें ज्यादातर कोई आभार नहीं मिलता?

भारत की 16 करोड़ गृहिणियां, दुनिया के अन्य हिस्सों में मौजूद कई अन्य गृहिणियों की तरह, साफ–सफाई, खाना पकाना, बर्तन धोना और परिवार के वित्तीय मामलों का प्रबंधन करती हैं। वे भोजन, पानी और लकड़ी लाती हैं, बच्चों और ससुराल वालों की देखभाल करती हैं। वे प्रतिदिन 297 मिनट घरेलू काम में बिताती हैं, जबकि पुरुष केवल 31 मिनट बिताते हैं। एक चौथाई पुरुष अवैतनिक घरेलू कार्यों में लगे हुए हैं, जबकि महिलाओं में यह आंकड़ा चार–पांचवां है।

विधि विशेषज्ञ गौतम भाटिया का तर्क है कि अवैतनिक घरेलू कार्य 'जबरन श्रम' है। दिल्ली विश्वविद्यालय के शोधार्थी अर्पण तुलस्यान का कहना है कि ''अवैतनिक घरेलू कार्य के महत्व को पहचानना आवश्यक है।'' यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि आधी सदी से भी अधिक समय से भारतीय अदालतें गृहिणियों द्वारा किए गए अवैतनिक कार्यों के लिए मुआवजा देती आ रही हैं, लेकिन यह मुआवजा उनकी मृत्यु के बाद ही दिया जाता है।

किंग्स कॉलेज, लंदन में कानून और न्याय की प्रोफेसर प्रभा कोटिस्वरन ने 1968 और 2021 के बीच दायर किए गए लगभग 200 मामलों का अध्ययन किया है, जो एक भारतीय कानून के तहत दर्ज किए गए हैं जो सभी सड़क परिवहन वाहनों को विनियमित करता है और अन्य बातों के अलावा लापरवाही से गाड़ी चलाने के लिए दंड लगाता है। उन्होंने पाया कि देश की अदालतों ने 'घरेलू काम के लिए उचित वेतन' से संबंधित एक अभूतपूर्व कानूनी ढांचा विकसित किया है– न्यायाधीशों ने सड़क दुर्घटनाओं में मरने वाली महिलाओं के अवैतनिक काम का मूल्य निर्धारित किया है और उनके आश्रितों को मुआवजा दिया है।

घर के काम के मूल्य की गणना करते समय, न्यायाधीशों ने अवसर लागत पर विचार किया है– जो कि किसी अन्य काम को करने के लिए छोड़ी गई चीज है– घर पर काम करने के

कैसे होगा घरेलू कामों के मूल्य का आकलन!

महिला के निर्णय की लागत, कुशल और अकुशल श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी पर विचार, मृतक महिला की शैक्षिक योग्यता को ध्यान में रखा है, और उम्र को ध्यान में रखते हुए और यह विचार करते हुए कि उसके बच्चे थे या नहीं, मुआवजे को समायोजित किया है। एक अदालत ने सड़क दुर्घटना में जान गंवाने वाली 33 वर्षीय गृहिणी के परिवार को 17 लाख रुपये (23,263 डॉलर या 17,019 पाउंड) का मुआवजा देने का आदेश दिया, जिसमें उसकी काल्पनिक आय 5,000 रुपये प्रति माह निर्धारित की गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने 34 से 59 वर्ष की आयु की मृत गृहिणी के लिए प्रति माह 9,000 रुपये तक की एकमुश्त राशि को काल्पनिक आय के रूप में प्रदान किया है, जबकि 62 से 72 वर्ष की आयु की महिलाओं के लिए यह राशि कम है। न्यायालयों का मानना है कि बच्चों के बड़े होने पर वह कम देखभाल का काम करेंगी, इसलिए उम्र बढ़ने के साथ मुआवजे की राशि कम हो जाती है। जहां तक संभव हो, न्यायाधीशों ने मुद्रास्फीति के अनुरूप चलने का

प्रयास किया है। एक फैसले में, न्यायाधीशों ने विवाह को एक 'समान आर्थिक साझेदारी' के रूप में देखा, जिसके अनुसार गृहिणी का वेतन पति के वेतन का आधा होगा। प्रोफेसर कोटिस्वरन द्वारा पाया गया इस प्रकार के मुआवजे का सबसे पहला मामला 1966 का एक फैसला था। उस मामले में, अदालत ने फैसला सुनाया कि पति द्वारा अपनी पत्नी के 'भरण–पोषण' की लागत उसकी काल्पनिक तनख्वाह के बराबर होती, इसलिए उसे कोई मुआवजा नहीं दिया गया।

प्रोफेसर कोटिस्वरन कहती हैं कि अदालतों द्वारा गणना किए गए कुछ मुआवजे मामूली रहे हैं, लेकिन बिना वेतन वाले काम को एक व्यवसाय के बराबर मान्यता देने का सिद्धांत अपने आप में काफी उल्लेखनीय है। इससे यह सवाल उठता है कि यदि किसी महिला की मृत्यु के बाद उसके द्वारा किए गए अवैतनिक कार्य के लिए परिवार को मुआवजा दिया जा सकता है, तो जीवित रहते हुए महिलाओं को भुगतान क्यों नहीं किया जाना चाहिए? इस बारे में प्रोफेसर कोटिस्वरन का कहना है कि वकील इन फैसलों का इस्तेमाल संवैधानिक कानून और पारिवारिक कानूनों में ऐसे बदलाव लाने के लिए कर सकते हैं, जिससे गृहिणियों के अवैतनिक काम को सामान्य परिस्थितियों में भी मान्यता मिले, न कि केवल संकट के समय। घर पर अवैतनिक काम करने वाली महिलाओं को मजदूरी देने से भारत में घटती महिला श्रम भागीदारी दर को भी बढ़ावा मिलेगा। प्रोफेसर कोटिस्वरन कहती हैं, "मैं सिर्फ गृहिणियों के लिए वेतन की बात नहीं कर रही, बल्कि घरेलू काम के बदले वेतन की व्यापक मांग कर रही हूं। संयुक्त राष्ट्र महिला जैसे संगठन इस बात पर ज्यादा ध्यान दे रहे हैं कि अवैतनिक कार्य, सवैतनिक कार्य में बाधा है। उनका ध्यान इस बात पर केंद्रित है कि अधिक से अधिक महिलाओं को सवैतनिक कार्य में कैसे लाया जाए। भारतीय महिला आंदोलन कई सराहनीय मुद्दों पर ध्यान केंद्रित कर रहा है, लेकिन विवाह के भीतर किए जाने वाले श्रम के बारे में महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं पूछ रहा है।"

उनका कहना है कि इस मुद्दे पर गृहिणियों का कोई व्यापक आंदोलन भी नहीं है। "अधिकांश अभिजात वर्ग का मानना है कि गृहिणियों को वेतन देना कम से कम अव्यवहारिक और ज्यादा से ज्यादा प्रतिगामी है, लेकिन गृहकार्य को मान्यता देने के लिए एक व्यापक राजनीतिक बहस की गुंजाइश है। मुझे लगता है कि लाखों भारतीय घरों में घर संभालने की मेहनत से जूझ रही महिलाएं वेतन के प्रस्ताव का स्वागत करेंगी।"

क्या मजदूरी का पैसा नकद हस्तांतरण, सरकारी सब्सिडी या सार्वभौमिक बुनियादी आय से आना चाहिए? क्या महिलाओं के अवैतनिक कार्य को मान्यता देने के लिए पारिवारिक कानूनों में बदलाव किया जाना चाहिए? हमें इन सभी पहलुओं पर अधिक गहन चर्चा करने की आवश्यकता है। (साभार : www.jaoi.org)

फोटो: cgsandesh.com

सर्वेक्षण

दस गुना अधिक घरेलू काम करती हैं स्त्रियां

महिलाओं द्वारा अवैतनिक घरेलू काम में बिताया गया समय आमतौर पर कामकाजी आयु वर्ग 20–49 वर्ष में चरम पर होता है, जो भारतीय महिलाओं के उत्पादक और प्रजनन कार्य–जीवन असंतुलन को दर्शाता है।

भारतीय महिलाएं पुरुषों की तुलना में 10 गुना अधिक घरेलू काम करती हैं। एक अध्ययन में कहा गया है कि छह वर्ष और उससे अधिक आयु की महिलाएं अवैतनिक घरेलू काम पर 301 मिनट व्यतीत करती हैं, जबकि पुरुष इसी काम में 98 मिनट व्यतीत करते हैं। भारतीय महिलाएं दुनिया के अन्य हिस्सों में अपने समकक्षों की तुलना में अवैतनिक घरेलू कामों और देखभाल संबंधी कार्यों में पुरुषों की तुलना में दस गुना अधिक काम करती हैं।

हालांकि, मुंबई स्थित इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज (IIPS) और मुंबई स्थित टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज (TISS) द्वारा किए गए शोध के अनुसार, शिक्षित महिलाएं कार्यभार प्रबंधन में बेहतर स्थिति में हैं। इस बात की पुष्टि करते हुए कि विवाहित भारतीय महिलाएं अपनी अविवाहित समकक्षों की तुलना में अवैतनिक कार्य का असमान बोझ– लगभग दोगुना– वहन करती हैं, रिपोर्ट में कहा गया है कि उच्च जाति की हिंदू, मुस्लिम और सिख महिलाएं अवैतनिक घरेलू कार्य में सबसे अधिक घंटे व्यतीत करती हैं।

जर्नल ऑफ फैमिली एंड इकोनॉमिक इश्यूज में प्रकाशित अध्ययन में कहा गया है, "विश्व स्तर पर महिलाएं पुरुषों की तुलना में अवैतनिक घरेलू और देखभाल कार्यों में तीन गुना अधिक समय व्यतीत करती हैं, लेकिन भारत में महिलाएं पुरुषों की तुलना में लगभग दस गुना अधिक समय व्यतीत करती हैं।"

इसमें यह भी बताया गया कि स्कूल जाने वाले बच्चों की उपस्थिति न केवल महिलाओं द्वारा अवैतनिक घरेलू काम में बिताए जाने वाले समय को बढ़ाती है, बल्कि एकल परिवार में रहने वाली महिलाओं का अवैतनिक काम का स्तर, बहु–पीढ़ी वाले घरों में रहने वाली महिलाओं की तुलना में औसतन अधिक होता है।

अध्ययन में उम्र की परवाह किए बिना पुरुषों और महिलाओं के बीच अवैतनिक घरेलू काम के विभाजन पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि छह साल और उससे अधिक उम्र की महिलाएं अवैतनिक घरेलू काम पर 301 मिनट खर्च करती हैं, जबकि पुरुष इसी काम में मात्र 98 मिनट लगाते हैं।

सर्वेक्षण

भारत के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ) द्वारा जनवरी–दिसंबर 2019 में आयोजित Time Use Survey (2019) के आंकड़ों का उपयोग करते हुए, अध्ययन में कहा गया है कि हालांकि जन्म देने वाले माता–पिता ससुराल वालों की तुलना में अधिक सहायक होते हैं, लेकिन माता–पिता और ससुराल वालों की शिक्षा का अवैतनिक घरेलू काम पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। हालांकि महिला प्रधान परिवारों में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले अवैतनिक घरेलू कार्य में कमी आती है, लेकिन पुरुष प्रधान परिवारों में यह कार्य बढ़ जाता है।

अध्ययन के प्रमुख लेखक बलहसन अली ने बताया कि चूंकि अवैतनिक कार्यों का बाजार मूल्य के आधार पर आकलन करना कठिन है, इसलिए उन्हें आर्थिक गतिविधि में शामिल नहीं किया जाता है। हालांकि, यदि इन्हें भी शामिल किया जाए, तो वैश्विक स्तर पर अर्थव्यवस्था में इनका योगदान सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 10 से 60% माना जाता है, जो काफी महत्वपूर्ण है। अवैतनिक घरेलू कार्य को भोजन और भोजन की तैयारी, अपने आवास और आसपास की सफाई और रखरखाव, स्वयं द्वारा की जाने वाली सजावट, मरम्मत, वस्त्रों और जूतों की देखभाल, घरेलू प्रबंधन, पालतू जानवरों की देखभाल, घर के सदस्यों के लिए खरीदारी करना, यात्रा करना, सामान लाना या परिवार के सदस्यों के साथ कहीं जाना आदि के रूप में परिभाषित किया गया था।

आईआईपीएस के सर्वेक्षण अनुसंधान और डेटा विश्लेषण विभाग के अली ने बताया कि महिलाओं द्वारा अवैतनिक घरेलू काम में बिताया गया समय आमतौर पर कामकाजी आयु वर्ग 20–49 वर्ष में चरम पर होता है, जो भारतीय महिलाओं के उत्पादक और प्रजनन कार्य–जीवन असंतुलन को दर्शाता है, और प्रजनन आयु के दौरान अवैतनिक कार्य के भारी बोझ को उजागर करता है। शहरी क्षेत्रों में रहने वाली अशिक्षित महिलाओं द्वारा अवैतनिक घरेलू काम में समय बिताने की संभावना ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली अशिक्षित महिलाओं की तुलना में 86.7% अधिक है।

इसके अलावा, 4,45,299 लोगों (2,26,644 पुरुष, 2,18,526 महिलाएं और 129 अन्य) के बीच किए गए अध्ययन के अनुसार, माध्यमिक शिक्षा प्राप्त शहरी महिलाओं द्वारा अपने ग्रामीण समकक्षों की तुलना में अवैतनिक घरेलू काम पर समय बिताने की संभावना लगभग तीन गुना अधिक है। छोटे परिवारों (जिनमें चार या उससे कम सदस्य हैं) की महिलाओं पर पड़ने वाला बोझ बड़े परिवारों में रहने वाली महिलाओं (प्रतिदिन 303 मिनट) की तुलना में कहीं अधिक महत्वपूर्ण (प्रतिदिन 320 मिनट) है।

जैसा कि अपेक्षित था, गरीब परिवारों की महिलाएं धनी परिवारों की महिलाओं (प्रतिदिन 304 मिनट) की तुलना में अवैतनिक घरेलू काम पर अधिक समय (प्रतिदिन 317 मिनट) व्यतीत करती हैं, रिपोर्ट में कहा गया है, और यह इसलिए हो सकता है क्योंकि अधिक समृद्ध परिवारों के पास घरेलू नौकरों को काम पर रखकर अपने अवैतनिक घरेलू काम को दूसरों को सौंपने के साधन होते हैं। इसमें यह भी कहा गया है कि अनुसूचित जाति (5%), अन्य पिछड़ा वर्ग (2%) और सामान्य जाति (4%) की महिलाएं अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की तुलना में अवैतनिक घरेलू कार्यों में काफी अधिक समय व्यतीत करती हैं। अनुसूचित जनजाति की महिलाओं द्वारा अवैतनिक कार्यों में कम संलग्न होने का मुख्य कारण यह है कि वे सवैतनिक कार्यों में अधिक समय देती हैं, जैसा कि आवधिक श्रम बल सर्वेक्षणों में स्पष्ट है।

(साभार : www.newindianexpress.com)

वास्तविकता

महिलाओं के 'अदृश्य श्रम' का हिसाब

यदि घर के कामों के बिना समाज चल ही नहीं सकता, तो इन्हें अर्थव्यवस्था का हिस्सा क्यों नहीं माना जाता?

फोटो: hindi.downtoearth.org.in

डॉ शरद कुमारी

प्रोग्राम मैनेजर, एक्शन एड, पटना तथा बिहार महिला समाज की पूर्व महासचिव

"जिस दिन औरतों के श्रम का हिसाब होगा, इतिहास की सबसे बड़ी धोखाधड़ी पकड़ी जाएगी।" यह कथन महिलाओं के अवैतनिक श्रम की वास्तविकता को गहराई से अभिव्यक्त करता है। सालों साल पहले कहे गए इस वाक्य का मूल संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है।

जब भी 'श्रम' शब्द सुनाई देता है, हमारे मन में प्रायः खेतों में काम करते किसान, कारखानों के मजदूर, कार्यालयों के कर्मचारी या निर्माण स्थलों पर कार्यरत श्रमिकों की छवि उभरती है। लेकिन घर की चारदीवारी के भीतर प्रतिदिन भोजन बनाना, बच्चों का पालन–पोषण, बुजुर्गों की देखभाल, घर की सफाई, पानी और ईंधन की व्यवस्था, परिवार के स्वास्थ्य और शिक्षा का ध्यान रखना–इन सभी कार्यों को अक्सर 'काम' नहीं माना जाता। यही वह अदृश्य श्रम है, जिसके सहारे परिवार, समाज और पूरी अर्थव्यवस्था चलती है।

अदृश्य श्रम की वास्तविकता यह है कि भारतीय गृहिणियाँ प्रतिदिन कई घंटे बिना किसी वेतन, अवकाश या सामाजिक सुरक्षा के कार्य करती हैं। राष्ट्रीय समय उपयोग सर्वेक्षण (Time Use Survey 2024) के अनुसार, महिलाएं प्रतिदिन औसतन लगभग 289 मिनट अवैतनिक घरेलू कार्य तथा 137 मिनट देखभाल संबंधी कार्य करती हैं, जबकि पुरुष इन कार्यों पर काफी कम समय देते हैं। इसका अर्थ है कि महिलाओं के समय का एक बड़ा योगदान देश की अर्थव्यवस्था को चलाने में लगता है, लेकिन यह सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में दिखाई नहीं देता।

"क्या करती हो दिनभर....?"

"तुम करती क्या हो दिनभर..?"

"दिनभर घर में पड़ी रहती है, एक काम समय पर नहीं कर सकती......?"

ऐसे पचासों जुमले हमने हर रोज सुने हैं, लेकिन ये हमारे परिवार, समाज और संस्कृति में ऐसे रच बस गए हैं कि कभी आम लोगों ने इसे गंभीरता से सोचना भी उचित नहीं समझा। हालांकि बड़े–बड़े विद्वानों और नारीवादी विचारकों ने बहुत ही पहले से हमारा ध्यान इस मुद्दे पर आकृष्ट करने का प्रयास किया है।

मारिलिन वारिंग (नारीवादी अर्थशास्त्री) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक If Women Counted में लिखा कि राष्ट्रीय आय की पारंपरिक गणना महिलाओं के घरेलू और देखभाल संबंधी कार्यों को लगभग अदृश्य बना देती है। उन्होंने प्रश्न उठाया कि यदि इन कार्यों के बिना समाज चल ही नहीं सकता, तो इन्हें अर्थव्यवस्था

वास्तविकता

यह समझ पाना मुश्किल है कि क्यों और कैसे यह परिस्थितियां बनती चली गईं कि रोटी कमाने वाला महत्वपूर्ण और प्रभावशाली हो गया और रोटी बनाने वाली किसी काम की नहीं .... ?

जब वही रोटी होटल और ढाबे में बनती है और पुरुष वही काम बाहर करते हैं तो घर के लिए रोटी कमाने वाले बन जाते हैं!! जबकि कृषि के सारे काम करके भी एक महिला किसान का दर्जा नहीं ले पाती है।

का हिस्सा क्यों नहीं माना जाता? अमर्त्य सेन ने विकास को केवल आय वृद्धि नहीं, बल्कि मानव क्षमताओं के विस्तार से जोड़ा। उनके अनुसार, महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वतंत्रता और निर्णय क्षमता में निवेश पूरे समाज के विकास का आधार है।

वहीं, सिल्विया फेडेरिची का मानना है कि घरेलू कार्य केवल परिवार की सेवा नहीं, बल्कि पूरे समाज के लिए श्रमशक्ति का पुनर्निर्माण (Reproduction of Labour) है। इसलिए इसका आर्थिक और सामाजिक महत्व अत्यंत बड़ा है। भारतीय समाज में गृहिणियों के योगदान को अगर हम निम्न तरीके से देखें कि वो किस प्रकार के कामों को अंजाम देती हैं तो –

–परिवार के सभी सदस्यों के लिए भोजन का प्रबंधन और बनाने की प्रक्रिया करना।

–स्वस्थ और शिक्षित मानव संसाधन तैयार करना।

–बच्चों के संस्कार, शिक्षा और व्यक्तित्व निर्माण की आधारशिला रखना।

–बुजुर्गों, दिव्यांगजनों और बीमार सदस्यों की देखभाल करना।

–परिवार की आर्थिक बचत और संसाधनों का कुशल प्रबंधन करना।

–संकट और आपदा के समय परिवार को संभालना।

–सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को अगली पीढ़ी तक पहुँचाना।

लेकिन इतना सब कुछ करने के बाद अभी भी यह समझ पाना मुश्किल है कि क्यों और कैसे यह परिस्थितियां बनती चली गईं कि रोटी कमाने वाला महत्वपूर्ण और प्रभावशाली हो गया और रोटी बनाने वाली किसी काम की नहीं ....??

दरअसल अनेक शोधकर्ताओं ने यह साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत जुटाए हैं कि उत्पादन के बदले पैसा पाने और उसका व्यापार करने के चलन से महिलाओं और गरीबों का महत्व कम हो गया है, वे अलग थलग पड़ गए हैं। पूंजी इकट्ठा करने से कुछ लोग धनी से और अधिक धनी होते जा रहे हैं जबकि बाकी लोगों के हाथों से उनकी जमीनें और अन्य संसाधन निकलते जा रहे हैं। उनके कब्जे में अब सिर्फ एक चीज है, उनकी मेहनत और श्रमशक्ति, लेकिन उनकी मेहनत और श्रमशक्ति की कीमत तय करना भी उनके हाथ में नहीं है। वास्तव में महान विचारक एंगल्स ने बड़े स्पष्ट रूप में कहा है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति ने ही वर्ग तथा जेंडर असमानता को जन्म दिया है। उनके अनुसार महिलाओं को नियंत्रण में रखने की जरूरत भी व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ आई। महिलाओं के प्रजनन तथा यौनिकता पर पुरुषों के नियंत्रण को एंगल्स ने 'विश्व इतिहास में मां के अधिकारों की हार' नाम दिया है। माना जाता है कि उच्च और मध्यमवर्गीय या सम्पत्तिशाली वर्ग की स्त्रियां खुद एक सम्पत्ति हैं और उनकी हैसियत सिर्फ उत्तराधिकारी को गर्भ में रखना, जन्म देना और पालन पोषण करने वाली है।

अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन और ज्यां द्रेज भी भारत में स्त्री पुरुष अनुपात संबंधित अपनी शोध में इसी तरह के नतीजे पर पहुंचते हैं, जब वे 1901 से लगातार व्यवस्थित तरीके से गिरते हुए स्त्री पुरुष अनुपात FMR का विश्लेषण करते हैं। फिर हमें यह देखने को भी मिलता है कि जब वही रोटी होटल और ढाबे में बनती है या कपड़े की सिलाई कढ़ाई, बच्चे सहित विकलांग जनों, बुढ़े बुजुर्गों और बीमारों की सेवा के लिए नर्सिंग या केयरटेकर, या सफाईकर्मी या अन्य ऐसे अन्य काम जब वही पुरुष बाहर करते हैं तो कीमत लेकर घर के लिए रोटी कमाने वाले बन जाते हैं!! जबकि कृषि के सभी सहयोगी काम करके भी महिला किसान का दर्जा और लाभ नहीं ले पाती है।

सवाल उससे भी बड़ा यह है कि असंगठित क्षेत्र में लगभग 90% से ज्यादा महिलाएं अपनी पूरी जिंदगी दोहरे बोझ (डबल बर्डन) में गुजारती आईं हैं.... अपने घर के लिए रोटी कमाया भी और बनाया भी जो कि उन घरों के लिए लगभग अनिवार्य सी स्थिति है। सिर्फ 10% से भी कम महिलाओं का घर से निकलना भी लगभग नियंत्रित है और उन्हें भी निकलने पर वही दोहरे बोझ के साथ, ''शौक से निकलने वाली'', ''फैशन की मारी'' और भी विशेषणों का भार भी संभालना पड़ता है।

फिर भी पूरे समाज की समझ में काम यानी मर्दानगी की बात...श्रम यानी मर्दों का श्रम...सच में कितने लोग अभी भी यह जानते हैं कि ये जो पूरी दुनिया में मनाया जा रहा श्रमिक–दिवस (1 मई) है, इसका श्रेय भी दरअसल महिलाओं को ही जाता है। इसी दिन कामगार महिलाओं ने काम के घंटे 8 करने के लिए लम्बे समय से चल रहे संघर्ष में जीत हासिल किया था। आज पूरी दुनिया में नौकरी के घंटे 8 हैं। लेकिन क्या कभी सोचा गया है कि बाहर की नौकरी के घंटे तो 8 हो गए, तनख्वाह भी सुनिश्चित हो गई, रविवार की छुट्टी भी तय है, बाकी कैजुअल लीव, मेडिकल लीव, प्रिवलेज लीव और अन्य सामाजिक सुरक्षा सब के लिए कानून भी बन गया। लेकिन आज भी एक नौकरी ऐसी है, जिसमें

वास्तविकता

न कोई काम के घंटे निश्चित हैं न कोई छुट्टी का दिन। न कोई वेतन न कोई कानूनी अधिकार, यह श्रम है— घरेलू महिलाओं का अवैतनिक श्रम, और पूरे समाज और परिवार को तो छोड़ दीजिए जिनके बच्चे भी संकोच से कहते हैं कि मेरी मां कुछ नहीं करती, हाउसवाइफ है।

अतः यह समझा जा सकता है कि महिलाओं के जीवन के तथा समाज के निम्न क्षेत्र पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अधीन हैं—

—महिलाओं की उत्पादन तथा श्रमशक्ति
—महिलाओं का प्रजनन
—महिलाओं की यौनिकता
—महिलाओं की गतिशीलता
—सम्पत्ति तथा अन्य आर्थिक संसाधन
—सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संस्थाएं।

समाज की मुख्य संस्थाओं जैसे परिवार, कानून, राजनैतिक, शैक्षणिक, आर्थिक, संचार माध्यमों व ज्ञान व्यवस्थाओं के विश्लेषण से बहुत साफ तौर पर पता लगता है कि सभी का स्वरूप पितृसत्तात्मक है या ये इस व्यवस्था के स्तंभ हैं। बड़ी गहराई तक जड़ें जमाई हुईं तथा मजबूती की कड़ियों से जुड़ी यह व्यवस्था अजेय मालूम होती है और यहां तक कि एकदम प्राकृतिक लगती है। इसका अर्थ बिलकुल भी नहीं है कि महिलाएं पितृसत्ता के तहत शक्तिहीन हैं। सच यह है कि कोई भी असमानतापूर्ण व्यवस्था बगैर दमित वर्ग की भागीदारी के चल ही नहीं सकती।

उपरोक्त सभी परिस्थितियों के बावजूद सामाजिक गतिशीलता के सिद्धांत पर धीरे—धीरे बहुत कुछ बदल भी रहा है, लेकिन अगर इन्हें रणनीतिक तरीके से ठीक नहीं किया जाएगा तो अराजक स्थिति भी पैदा हो सकती है। विवाह और परिवार संस्था का अस्तित्व संकट में होगा। बेहतर है कि श्रम विभाजन का आधार क्षमता हो न कि लैंगिक। अभी भी वक्त है कि नयी पीढ़ी की परवरिश सामाजिक लिंग/जेंडर के आधार पर न हो कर उनकी क्षमताओं और जरूरत के आधार पर की जाए।

कुछ साल पहले संसद में यह सवाल उठा था। महिलाओं के घरेलू श्रम को जीडीपी से जोड़ने का और उस श्रम कीमत का यक्ष प्रश्न। दुनिया की कोई भी मेहनत मुफ्त की नहीं होनी चाहिए, उसे उसका मूल्य मिलना ही चाहिए। सवाल आया और चला गया, ज्यादा विचार—विमर्श नहीं किया गया इस पर क्योंकि देश के लिए ये इतना भी जरूरी सवाल नहीं था शायद। आमतौर पर परिवार और समाज को भी यह सवाल उतना जरूरी नहीं लगता है। अभी इधर के दिनों में एक मुआवजा के सवाल पर सुप्रीम कोर्ट ने इस प्रश्न को जिंदा कर दिया है, एक बार फिर बड़ी—बड़ी बाते हुई हैं लेकिन कोई गंभीर विमर्श नहीं हुआ और नयी पीढ़ी भी संक्रमित हो चुकी है। अतः हम समाजशास्त्रियों का कहना मानें कि महिलाओं का घरेलू श्रम केवल परिवार के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक पुनरुत्पादन (Social Reproduction) का कार्य है। यदि गृहिणियाँ एक दिन भी अपने सभी कार्य बंद कर दें, तो परिवार, बाजार और संस्थागत व्यवस्था गंभीर रूप से प्रभावित हो जाएगी। तो क्या किया जाना चाहिए?

—अवैतनिक घरेलू कार्य को नीति निर्माण में महत्व दिया जाए।
—समय उपयोग सर्वेक्षणों का नियमित उपयोग किया जाए।
—देखभाल कार्य (Care Economy) को आर्थिक योजना का हिस्सा बनाया जाए।
—महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा, पेंशन और बीमा जैसी सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ।
—घरेलू कार्यों में पुरुषों/लड़कों की समान भागीदारी को प्रोत्साहित किया जाए।

भारतीय गृहिणियाँ केवल ''घर संभालने वाली'' नहीं हैं, वे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की मौन निर्माता हैं। उनका श्रम भले ही वेतन में न दिखाई दे, लेकिन उसके बिना परिवार, समाज और अर्थव्यवस्था की कल्पना संभव नहीं है। इसलिए समय आ गया है कि उनके अवैतनिक श्रम को सम्मान, मान्यता और नीति—निर्माण में उचित स्थान दिया जाए।

''यदि किसी राष्ट्र और समाज की वास्तविक समृद्धि को मापना है, तो केवल उसके बाजार को नहीं, बल्कि उसके घरों में प्रतिदिन होने वाले अदृश्य श्रम को भी पहचानना होगा।''

एक गृहिणी का आर्थिक मूल्य

फोटो: www.bbc.com/hindi

"यह धारणा कि गृहिणियां काम नहीं करतीं या घर की अर्थव्यवस्था में कोई योगदान नहीं देतीं, एक समस्याजनक सोच है और इसे दूर करने की आवश्यकता है"– यह बयान सर्वोच्च न्यायालय ने 2021 में एक मोटर दुर्घटना मामले की सुनवाई करते हुए दिया था। न्यायालय उस मामले में मुआवजे के आवंटन पर विचार कर रहा था, जिसमें दिल्ली उच्च न्यायालय ने मृतक पत्नी की आय को कम कर दिया था क्योंकि वह गृहिणी थी। न्यायमूर्ति एन.वी. रमना की अध्यक्षता वाली तीन न्यायाधीशों की पीठ का मत था कि गृहिणियों द्वारा किए गए परिश्रम और श्रम का आर्थिक मूल्य निर्धारित करना कठिन है, लेकिन फिर भी यह महत्वपूर्ण है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कुछ वर्ष पहले दिए गए एक अन्य बयान पर विचार करें– "गृहिणियां एक अमूल्य, अवैतनिक संसाधन हैं और निश्चित रूप से अनुत्पादक नहीं हैं।" यह बयान 2001 की जनगणना रिपोर्ट के संदर्भ में दिया गया था, जिसमें गृहिणियों और घरेलू काम में लगी महिलाओं को भिखारियों, वेश्याओं और कैदियों जैसी श्रेणियों में शामिल किया गया था। जनगणना रिपोर्ट का मत था कि गृहिणियों को भिखारियों और वेश्याओं के साथ एक ही श्रेणी में रखने का कारण यह है कि इनमें से कोई भी प्रत्यक्ष रूप से अर्थव्यवस्था में योगदान नहीं देती है। सरल शब्दों में कहें तो, इसका अर्थ है कि तीनों श्रेणियों के लोग अनुत्पादक हैं। न्यायालय ने गृहिणियों के प्रति वैधानिक अधिकारियों के दृष्टिकोण को अत्यंत असंवेदनशील और संवेदनहीन बताया, जो महिलाओं के प्रति प्रबल लैंगिक पूर्वाग्रह को दर्शाता है। परंपरागत रूप से, भारतीय समाज में, गृहिणियों द्वारा अपने घरों के विकास और बदले में अर्थव्यवस्था के विकास में किए गए योगदान को लगभग हमेशा ही अनदेखा किया गया है। भारत की 16 करोड़ गृहिणियां, दुनिया के अन्य हिस्सों में अपनी समकक्षों की तरह, घर में खाना बनाना, सफाई करना, बर्तन धोना और वित्तीय प्रबंधन जैसे काम करती हैं।

एक कम ज्ञात तथ्य यह है कि भारतीय अदालतें आधी सदी से भी अधिक समय से गृहिणियों द्वारा किए गए बिना वेतन के काम के लिए मुआवजा देती आ रही हैं, लेकिन केवल उनकी मृत्यु के बाद ही। किसी मृत गृहिणी के मामले में मुआवजे की राशि की गणना करते समय, न्यायाधीश कई कारकों को ध्यान में रखते हैं– घर पर काम करने के महिला के निर्णय की अवसर लागत, मृतक की शैक्षणिक योग्यता, उसकी आयु और क्या उसके बच्चे थे या नहीं। सर्वोच्च न्यायालय ने 34 से 60 वर्ष की आयु की मृत गृहिणी के लिए 9000 रुपये प्रति माह तक की मामूली राशि प्रदान

गृहिणियां–भिखारी एक समान?

2010 में उच्चतम न्यायालय ने जनगणना में गृहिणियों को वेश्याओं, भिखारियों और कैदियों के साथ शामिल करने और उन्हें आर्थिक रूप से अनुत्पादक श्रमिकों के रूप में वर्णित करने के लिए सरकार की कड़ी आलोचना की थी। गृहिणी महिलाओं को ऐसे वर्गों के साथ समान मानने के वैधानिक अधिकारियों के दृष्टिकोण को पूरी तरह से असंवेदनशील और निर्दयी बताया था और कहा कि यह महिलाओं के प्रति एक मजबूत लैंगिक पूर्वाग्रह का संकेत है। जनगणना के काम में यह पूर्वाग्रह चौंकाने वाली हद तक व्याप्त है।

2001 की जनगणना में ऐसा प्रतीत होता है कि खाना पकाने, बर्तन साफ करने, बच्चों की देखभाल करने, पानी लाने, लकड़ी इकट्ठा करने जैसे घरेलू काम करने वालों को गैर–श्रमिकों की श्रेणी में रखा गया है और उन्हें भिखारियों, वेश्याओं और कैदियों के बराबर माना गया है, जो जनगणना के अनुसार आर्थिक रूप से उत्पादक काम में संलग्न नहीं हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की, ''इस प्रकार के वर्गीकरण के परिणामस्वरूप, भारत में लगभग 36 करोड़ (367 मिलियन) महिलाओं को भारत की जनगणना, 2001 में गैर–श्रमिकों के रूप में वर्गीकृत किया गया है और उन्हें भिखारियों, वेश्याओं और कैदियों की श्रेणी में रखा गया है।''

उस समय न्यायमूर्ति जी.एस. सिंहवी और ए.के. गांगुली की पीठ ने सड़क दुर्घटना में अपनी पत्नी रेनू की मृत्यु के लिए मोटर दुर्घटना न्यायाधिकरण और इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए मामूली मुआवजे को चुनौती देने वाले पीड़ित पति अरुण कुमार अग्रवाल की अपील को बरकरार रखा था। हालांकि मोटर वाहन अधिनियम के संरचित फार्मूले के तहत, परिवार छह लाख रुपये के मुआवजे का हकदार था, लेकिन न्यायाधिकरण ने इस आधार पर मुआवजे को घटाकर मात्र 2.5 लाख रुपये कर दिया कि रेनू केवल एक गृहिणी थी और इसलिए 'आश्रितता की हानि' इतनी अधिक राशि के योग्य नहीं थी। ट्रिब्यूनल ने पति की इस दलील के बावजूद आदेश पारित किया कि उसकी पत्नी अंशकालिक पेंटिंग का काम करती थी और प्रति माह 50,000 रुपये कमाती थी और परिवार को मृतका के भावनात्मक समर्थन, प्यार और स्नेह की भारी हानि हुई थी।

उच्च न्यायालय ने न्यायाधिकरण के निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की, जिसके आधार पर पति ने सर्वोच्च न्यायालय में अपील की। दोनों अदालतों के दृष्टिकोण से असहमत होते हुए, पीठ ने कहा, ''पत्नी द्वारा सच्चे प्यार और स्नेह के साथ बच्चों और अपने पति को दी गई निःशुल्क सेवाएं और घर के कामकाज का प्रबंधन दूसरों द्वारा दी गई सेवाओं के बराबर नहीं माना जा सकता है।'' सर्वोच्च न्यायालय ने कहा, "एक पत्नी/मां घड़ी के हिसाब से काम नहीं करती। वह दिन–रात परिवार की देखभाल करती है, सिवाय तब जब वह नौकरी करती हो और नियोक्ता के काम पर कुछ घंटों के लिए उपस्थित होना आवश्यक हो। वह पति और बच्चों की सभी जरूरतों का ख्याल रखती है, जिसमें खाना बनाना, कपड़े धोना आदि शामिल हैं। वह छोटे बच्चों को पढ़ाती है और उनके भविष्य के लिए अमूल्य मार्गदर्शन प्रदान करती है।"

की, जबकि 61 से 72 वर्ष की आयु की मृत गृहिणी के लिए मुआवजे की राशि कम है। मुआवजे में कमी का कारण यह है कि न्यायालयों का मानना है कि बच्चों के बड़े होने के साथ–साथ गृहिणी द्वारा किए जाने वाले काम की मात्रा काफी कम हो जाती है।

इस पितृसत्तात्मक समाज में बहुत से लोग मानते हैं कि महिलाएं गृहिणी की भूमिका के लिए ही बनी हैं और उनका काम घर और परिवार का भरण–पोषण करना है। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि भले ही गृहिणियों द्वारा किया गया घरेलू काम अवैतनिक हो, फिर भी यह आर्थिक गतिविधि है और इसे राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाना चाहिए। इस मुद्दे पर राजनीतिक मोर्चे पर भी प्रयास किए गए। बड़ी संख्या में महिलाएं घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं क्योंकि वे आर्थिक रूप से अपने पतियों पर निर्भर होती हैं। इसलिए, 2012 में तत्कालीन महिला एवं बाल विकास मंत्री कृष्णा तीरथ ने सुझाव दिया था कि गृहणियों द्वारा किए गए श्रम का मूल्यांकन किया जाना चाहिए और उन्हें उनके पतियों द्वारा उचित राशि का भुगतान किया जाना चाहिए ताकि वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो सकें और गरिमापूर्ण जीवन जी सकें। हालांकि, इस प्रस्ताव का भारी विरोध हुआ और दो साल बाद 2014 में सत्ता परिवर्तन के साथ इसे चुपचाप दबा दिया गया। (साभार : gipe.ac.in)

महिलाएं घर का काम करना बंद कर दें तो!

चीन की एक अदालत ने 2021 में तलाक से जुड़े एक मामले में ऐतिहासिक फैसला दिया। कोर्ट ने एक व्यक्ति को निर्देश दिया कि वह पांच साल तक चली शादी के दौरान पत्नी द्वारा किए गए घरेलू काम के बदले में उसे मुआवजा दे। इस मामले में महिला को 5.65 लाख रुपये देने का फैसला हुआ। लेकिन इस फैसले ने चीन समेत दुनिया भर में बड़ी बहस को जन्म दे दिया।

कुछ लोगों का मानना है कि महिला घर के काम के बदले में मुआवजे के रूप में कुछ भी लेने की हकदार नहीं हैं। वहीं, कुछ लोगों का मानना है कि जब महिलाएं अपने करियर से जुड़े अवसरों को त्याग कर हर रोज घंटों घरेलू काम करती हैं तो उन्हें मुआवजा क्यों नहीं मिलना चाहिए। इससे पहले जनवरी महीने में भारत की सर्वोच्च अदालत ने अपने फैसले में लिखा था कि ''घर का काम परिवार की आर्थिक स्थिति में वास्तविक रूप से योगदान करता है और राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में योगदान करता है।''

ये पहला मौका नहीं था जब अदालतों ने घर के काम को आर्थिक गतिविधि के रूप में स्वीकृति दिलाने वाले फैसले दिये हों। चीन से लेकर भारत और पश्चिमी दुनिया के देशों में अदालतें बार–बार महिलाओं द्वारा किए गए अवैतनिक श्रम (अनपेड लेबर) को आर्थिक उत्पादन के रूप में स्थापित करने वाले फैसले देती रही हैं। लेकिन इसके बावजूद घर के काम को जीडीपी में योगदान के रूप में नहीं देखा जाता है। यही नहीं, समाज घर के काम को वह अहमियत नहीं देता है जितनी नौकरी या व्यवसाय में किए गए काम को देता है। ऐसे में सवाल उठता है कि अगर महिलाएं घर के काम छोड़कर केवल नौकरी या व्यवसाय शुरू कर दें तो क्या होगा।

घर के काम के मायने क्या हैं?

दुनिया की अधिकांश महिलाएं इस सवाल से जूझती हैं कि समाज एक गृहिणी के रूप में उनके द्वारा किए गए घर के काम को वो सम्मान क्यों नहीं दिया जाता जो पुरुषों द्वारा किए गए काम को दिया जाता है। जबकि एक गृहिणी के रूप में महिलाओं के काम के घंटे पुरुषों के किए गए काम के घंटों की तुलना में कहीं अधिक होते हैं। सालों तक पत्रकारिता के साथ–साथ घरेलू काम से जुड़ी जिम्मेदारियां उठाने वाली कृतिका खुद इस सवाल से जूझ रही हैं। वे कहती हैं, ''मुझे कभी समझ नहीं आया कि लोग घर के काम को अहमियत क्यों नहीं देते? ऐसे माना जाता है कि घर का काम मतलब कोई काम ही नहीं। जबकि घर के काम आसान नहीं होते। घर पर अगर किसी को तय समय पर दवा देनी है, तो वो काम करना है, खाना तय समय पर बनना है, तो बनना है। इसमें किसी तरह की राहत नहीं मिलती। इन सबके बाद अगर किसी को शाम को भूख लग गई तो उसके लिए भी कुछ न कुछ बनाना होता है। सही कहूं तो घर के काम करने वाली महिला को अलादीन का चिराग समझा जाता है। मेरे पास इससे सटीक मेटाफर नहीं है। अगर कभी सहयोग की माँग की भी जाए तो कहा जाता है कि करती ही क्या हो... मम्मी भी करती थीं। उन्होंने तो कभी कुछ नहीं कहा।''

आर्थिक मूल्य निकालना मुश्किल है?

ध्यान से देखें तो हर काम का कोई न कोई मूल्य होता है। तो ये कैसे संभव है कि महिलाओं द्वारा घर पर रहकर किए गए काम का कोई आर्थिक मूल्य न हो? किसी भी काम का मूल्य निकालने के लिए जरूरी

है कि उस काम का ठीक–ठीक आकलन किया जाए। महिलाओं के किए गए अवैतनिक घरेलू श्रम यानी घर के काम का मूल्य निकालने के लिए तीन फॉर्मूले उपलब्ध हैं –

Oppurtunity Cost Method
Replacement Cost Method
Input/Output Cost Method

पहले फॉर्मूले के मुताबिक, अगर कोई महिला बाहर जाकर पचास हजार रुपये कमा सकती है और इसके बावजूद वह घर के काम करती है तो उसके काम की कीमत पचास हजार रुपये मानी जानी चाहिए। वहीं, दूसरे फॉर्मूले के मुताबिक, एक महिला द्वारा किए गए घर के काम का मूल्य उन सेवाओं के लिए किए जाने वाले खर्च के आधार पर तय होती है। सरल शब्दों में कहें तो अगर एक महिला की जगह घर पर कोई और काम करता है तो जो खर्च उसकी सेवाएं लेने के बदले में होगा, वही उस महिला के द्वारा किए गए काम का मूल्य होगा। इसी तरह तीसरे फॉर्मूले में एक महिला द्वारा घर पर किए गए काम की मार्केट वेल्यू निकाली जाती है। लेकिन इनमें से कोई भी फॉर्मूला भावनात्मक रूप से दी गई सेवाओं का सही मूल्य नहीं निकालता है।

अर्थव्यवस्था में महिलाओं का योगदान

अंतरराष्ट्रीय संस्था ऑक्सफेम के एक अध्ययन के मुताबिक, महिलाओं द्वारा किए गए घर के काम का मूल्य भारतीय अर्थव्यवस्था का 3.1 फीसदी है। साल 2019 में महिलाओं द्वारा किए गए घर के काम की कीमत दस ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर से भी ज्यादा थी। ये फॉर्च्यून ग्लोबल 500 लिस्ट की पचास सबसे बड़ी कंपनियों जैसे वॉलमार्ट, ऐप्पल और अमेजन आदि की कुल आमदनी से भी ज्यादा थी। इसके बाद भी भारतीय अदालतों को बार–बार गृहिणियों के काम को आर्थिक मायने देने के लिए फैसले देने पड़ते हैं। हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक फैसले में कहा है, "एक गृहिणी की आमदनी को निर्धारित करने का मुद्दा काफी अहम है। यह उन तमाम महिलाओं के काम को मान्यता देता है, जो चाहे विकल्प के रूप में या सामाजिक/सांस्कृतिक मानदंडों के परिणामस्वरूप इस गतिविधि में लगी हुई हैं। यह बड़े पैमाने पर समाज को संकेत देता कि कानून और न्यायालय गृहिणियों की मेहनत, सेवाओं और बलिदानों के मूल्य में विश्वास करता है।"

यह इस विचार की स्वीकृति है कि ये गतिविधियां परिवार की आर्थिक स्थिति में वास्तविक रूप से योगदान करती हैं और राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में योगदान करती हैं। इस तथ्य के बावजूद इन्हें पारंपरिक रूप से आर्थिक विश्लेषण से बाहर रखा गया है। यह बदलते दृष्टिकोण, मानसिकता और हमारे अंतरराष्ट्रीय कानून दायित्वों का प्रतीक है। और, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सामाजिक समानता की संवैधानिक दृष्टि की ओर एक कदम है और सभी व्यक्तियों को जीवन की गरिमा सुनिश्चित करता है।

महिलाएं जो काम करती हैं वो क्या है?

ध्यान से देखें तो गृहिणी के रूप में काम के दौरान महिलाएं तीन वर्गों को अपनी सेवाएं देती हैं। पहला वर्ग वरिष्ठ नागरिक, जो देश की आर्थिक गतिविधियों में प्रत्यक्ष रूप से योगदान दे चुके होते हैं, दूसरा युवा वर्ग जो वर्तमान में जीडीपी में योगदान दे रहे हैं और तीसरा बच्चे जो आने वाले सालों में अर्थव्यवस्था में अपना योगदान देंगे। तकनीकी भाषा में इसे अब्सट्रेक्ट लेबर कहा

जाता है। ये एक ऐसा श्रम है कि जो किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में प्रत्यक्ष रूप से लगे श्रम के पुनर्जीवन में सीधे–सीधे अपना योगदान देता है।

सरल शब्दों में कहें तो एक महिला अपने पति के कपड़े धोने, प्रेस करने से लेकर उसके खाने–पीने, शारीरिक एवं मानसिक सेहत आदि का ख्याल रखती है ताकि वह ऑफिस जाकर काम कर सके। वह बच्चों को पढ़ाती है ताकि वो बाद में देश के मानव संसाधन का हिस्सा बन सकें। वह अपने माता–पिता और सास–ससुर की सेहत का ध्यान रखती हैं जो देश की आर्थिक प्रगति में अपना योगदान दे चुके होते हैं। अब अगर इस पूरे समीकरण में से गृहिणी को निकाल दिया जाए तो सरकार को बच्चों का ध्यान रखने के लिए बाल कल्याण सेवाओं, वरिष्ठ नागरिकों का ध्यान रखने के लिए वृद्धाश्रम, केयर गिवर आदि पर बेतहाशा खर्च करना पड़ेगा।

क्या होगा अगर महिलाएं काम बंद कर दें?

फिलहाल, ये काम गृहिणियां कर रही हैं जो मूलतः सरकार के हिस्से का काम है क्योंकि एक नागरिक की देखभाल की जिम्मेदारी राष्ट्र की होती है। ऐसे में सवाल उठता है कि अगर महिलाएं फ्री में सरकार के लिए काम करना बंद कर दें तो क्या होगा? असंगठित क्षेत्र एवं श्रम से जुड़े विषयों पर अध्ययन कर चुकीं जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की प्रोफेसर अर्चना प्रसाद मानती हैं कि यदि महिलाएं घर के काम ही बंद कर दें तो ये सिस्टम पूरी तरह ठप हो जाएगा। वे कहती हैं, ''महिलाएं ये अनपेड काम करना बंद कर दें तो पूरा तंत्र ही ठप हो जाएगा, क्योंकि महिला का अनपेड वर्क ही तो सिस्टम को सब्सिडाइज करता है। अगर घर के काम और केयर से जुड़े काम का खर्च सरकार या कंपनियों को वहन करना होगा तो श्रम की मूल्य काफी बढ़ जाएगा, क्योंकि महिलाएं श्रम शक्ति को पुनर्जीवित कर रही हैं, उसे संभाल रही हैं। इस तरह से हर आदमी के श्रम में महिला का अनपेड श्रम शामिल है। तकनीकी भाषा में हम इसे अब्सट्रेक्ट लेबर कहते हैं।''

महिलाओं द्वारा किए गए घरेलू काम को जीडीपी में योगदान के रूप में स्वीकार्यता दिलाने की पक्षधर अर्थशास्त्री, लेखिका और न्यूजीलैंड की राजनेता मर्लिन वैरिंग मानती हैं कि जीडीपी में महिला द्वारा गर्भधारण तक को एक उत्पादक गतिविधि नहीं माना जाता है जबकि वह भविष्य के मानव संसाधन को जन्म देती हैं। अपने देश का उदाहरण देते हुए वे कहती हैं, ''न्यूजीलैंड के नेशनल अकाउंट्स, जहां से जीडीपी के आँकड़े मिलते हैं, में गाय, बकरी, भेड़ और भैंस के दूध की कीमत है लेकिन माँ के दूध की कोई कीमत नहीं है जबकि वह दुनिया का सबसे अच्छा खाद्य पदार्थ है। ये बच्चे की सेहत और शिक्षा में सबसे अच्छा निवेश है लेकिन इसे गिना नहीं जाता है।''

साल 1975 में आइसलैंड की नब्बे फीसदी महिलाओं ने 24 अक्तूबर को एक दिन के लिए खाना बनाने, सफाई करने और बच्चों की देखभाल करने से इनकार कर दिया। महिलाओं के इस ऐलान का असर ये हुआ कि पूरा देश एकाएक रुक गया। काम पर गए पुरुषों को तत्काल घर वापसी करनी पड़ी और बच्चों को रेस्त्रां लेकर भागना पड़ा और वे सभी काम रुक गए जो कि आमतौर पर पुरुष किया करते थे।

आर्थिक पहचान कैसे दी जाए?

अब सवाल ये उठता है कि महिलाओं द्वारा किए जाने वाले घर के काम को किस तरह आर्थिक पहचान दी जा सकती है। अवैतनिक श्रम पर कई किताबें लिख चुकीं अहमदाबाद स्थित सेंटर फॉर डेवलपमेंट अल्टरनेटिव्स में अर्थशास्त्र की प्रोफेसर इंदिरा हीरवे मानती हैं कि महिलाओं द्वारा किए जाने वाले काम को एक उत्पादन की तरह देखा जाना चाहिए। वे कहती हैं, ''घर में महिलाएं जो खाना बनाती हैं, कपड़े धोती हैं, बाजार से सामान लाती हैं, बच्चों की केयर करती हैं, घर में बीमार लोगों का खयाल रखती हैं– वो सर्विस है यानी सीधे–सीधे उत्पादन से जुड़ा है। ये काम देश की आमदनी और देश को सेहतमंद रखने में उनका योगदान है। अगर एक नर्स की सेवाएं ली जाएं तो उसे राष्ट्रीय आय में गिना जाता है, लेकिन यही काम अगर एक गृहिणी करे तो उसे राष्ट्रीय आय में नहीं गिना जाता है। ये गलत बात है जबकि काम तो वही है। इसका कोई कारण ही नहीं है कि इन्हें राष्ट्रीय आय से बाहर रखा जाए। यही नहीं, वे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में भी योगदान देती हैं। सरकारी क्षेत्र से लेकर निजी क्षेत्र तक कोई भी महिलाओं के लिए इस अवैतनिक श्रम के बिना नहीं चल सकते।''

इतिहास के पन्ने पलटें तो एक समय ऐसा आया है जब वो हुआ है जिसके संकेत प्रोफेसर हीरवे ने दिए हैं। साल 1975 में आइसलैंड की नब्बे फीसदी महिलाओं ने 24 अक्तूबर को एक दिन के लिए खाना बनाने, सफाई करने और बच्चों की देखभाल करने से इनकार कर दिया। महिलाओं के इस ऐलान का असर ये हुआ कि पूरा देश एकाएक रुक गया। काम पर गए पुरुषों को तत्काल घर वापसी करनी पड़ी और बच्चों को रेस्त्रां लेकर भागना पड़ा और वे सभी काम रुक गए जो कि आमतौर पर पुरुष किया करते थे। लेकिन सवाल ये उठता है कि क्या वर्तमान समय में भी महिलाएं इस तरह का अवैतनिक श्रम करना बंद कर दें तो वही होगा जो 1975 में हुआ था।

(चित्र एवं आलेख साभार : www.bbc.com/hindi)

महत्वपूर्ण तथ्य

स्त्रियों की श्रमबल सहभागिता के बदलते डायनेमिक्स

रश्मि झा

बाल अधिकारों और लैंगिक विषयों पर काम करती हैं। वर्तमान में पिरामल स्कूल ऑफ लीडरशिप में प्रोग्राम डायरेक्टर के पद पर हैं

फोटो: www.nytimes.com

समकालीन डेवलपमेंट इकोनॉमिक्स स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण और महिला सशक्तिकरण में निवेश को केवल सोशल वेलफेयर का विषय नहीं मानते हुए इन्हें उत्पादक अर्थव्यवस्था और सतत् विकास की आधारशिला के रूप में देखता है। इसी कारण आज किसी भी देश की प्रगति को केवल GDP या आय वृद्धि से नहीं, बल्कि इस बात से भी आँका जाता है कि विकास के लाभ महिलाओं तक पहुँच रहे हैं या नहीं और वे स्वयं आर्थिक गतिविधियों में कितनी सक्रिय भूमिका निभा रही हैं।

महिलाओं की श्रमबल सहभागिता इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण संकेतक है। यह केवल रोजगार का आँकड़ा नहीं है– यह समाज में लैंगिक संबंधों, संसाधनों तक पहुँच, निर्णय लेने की क्षमता, शिक्षा, मोबिलिटी और केयर संबंधी जिम्मेदारियों के वितरण का प्रतिबिंब भी है। इसलिए किसी देश में महिलाओं की श्रमबल भागीदारी को समझना, वस्तुतः उस समाज में विकास की प्रकृति को समझना है। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत और मेडागास्कर का तुलनात्मक अध्ययन एक रोचक लेकिन चुनौतीपूर्ण प्रश्न खड़ा करता है। मेडागास्कर जैसे निम्न आय वाले देश में महिलाओं की श्रमबल सहभागिता 70–80 प्रतिशत के बीच है, जबकि भारत में यह लगभग 33 प्रतिशत है। पहली नजर में यह अंतर यह संकेत दे सकता है कि मेडागास्कर में महिलाएँ अधिक सशक्त हैं। किंतु वास्तविकता इससे कहीं अधिक जटिल है।

अर्थशास्त्री एवं नोबेल पुरस्कार विजेता Claudia Goldin ने महिलाओं की श्रमबल सहभागिता और आर्थिक विकास के संबंध को समझाने के लिए 'U-Shaped Relationship' का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उनके अनुसार, आर्थिक विकास और महिला श्रम भागीदारी के बीच संबंध रैखिक नहीं होता। विकास के प्रारंभिक चरण में, जब अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि आधारित होती है,

महत्वपूर्ण तथ्य

महिलाएँ खेती, पशुपालन और पारिवारिक उत्पादन कार्यों में बड़ी संख्या में कार्यरत रहती हैं। जैसे–जैसे औद्योगीकरण बढ़ता है और पारिवारिक आय में वृद्धि होती है, महिलाओं की श्रम भागीदारी घटने लगती है। बाद के चरण में, जब शिक्षा, सेवाक्षेत्र और ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था का विस्तार होता है, तब महिलाओं की भागीदारी पुनः बढ़ती है।

मेडागास्कर वर्तमान समय में इस 'U' के पहले हिस्से का प्रतिनिधित्व करता दिखाई देता है। मेडागास्कर को एक गरीब देश माना जाता है और यह दुनिया के सबसे कम विकसित देशों में से एक है, जहाँ लगभग 75% से 80% आबादी रोजाना $2.15 से भी कम पर गुजारा करती है। वहाँ महिलाओं की उच्च श्रम भागीदारी मुख्यतः आर्थिक विवशता का परिणाम है। बड़ी संख्या में महिलाएँ जीविकोपार्जन कृषि, अनौपचारिक कार्य और कम आय वाले रोजगारों में संलग्न हैं। इसलिए उच्च श्रम भागीदारी को स्वतः सश. क्तिकरण का पर्याय नहीं माना जा सकता। यदि महिलाएँ गरीबी, असुरक्षा और सीमित विकल्पों के कारण कार्य कर रही हैं, तो श्रमबल में उनकी उपस्थिति आर्थिक आवश्यकता का संकेत हो सकती है, न कि समान अवसरों का।

यही कारण है कि मेडागास्कर में उच्च श्रम भागीदारी के बावजूद महिलाओं की स्थिति अनेक सामाजिक संकेतकों पर चुनौतीपूर्ण बनी हुई है। लैंगिक हिंसा, सीमित निर्णय क्षमता और संसाधनों पर कमजोर नियंत्रण यह दर्शाते हैं कि आर्थिक गतिविधियों में शामिल होना और वास्तविक सशक्तिकरण दो अलग–अलग प्रक्रियाएँ हैं। महिलाएँ काम कर सकती हैं, लेकिन यदि उनके पास अपने श्रम, आय और जीवन से जुड़े निर्णय लेने की शक्ति नहीं है, तो विकास अधूरा रह जाता है।

भारत का मामला अलग लेकिन उतना ही चिंताजनक है। भारत विश्व की सबसे तेजी से बढ़ती बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, लेकिन महिलाओं की श्रमबल सहभागिता अपेक्षाकृत कम बनी हुई है। केंद्र सरकार के सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय के तहत NSO द्वारा किया जाने वाले पीरियोडिक लेबर फोर्स सर्वे के अनुसार, जून 2026 में महिलाओं की श्रमबल सहभागिता दर लगभग 32.7 प्रतिशत थी। यह आँकड़ा बताता है कि देश की दो–तिहाई से अधिक कार्यशील आयु की महिलाएँ श्रम बाजार से बाहर हैं।

यह स्थिति एक महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा करती है–यदि अर्थव्यवस्था बढ़ रही है, शिक्षा का विस्तार हो रहा है और तकनीकी अवसर बढ़ रहे हैं, तो महिलाएँ कार्यबल में पर्याप्त संख्या में क्यों नहीं आ रही हैं? इस प्रश्न का उत्तर केवल रोजगार के अवसरों में नहीं, बल्कि समाज की संरचना में छिपा है। भारत की अर्थव्यवस्था में पिछले तीन दशकों में सेवाक्षेत्र (Tertiary Sector) का विस्तार हुआ है और यह आज GDP तथा रोजगार सृजन का प्रमुख स्रोत बन चुका है, फिर भी इसका लाभ महिलाओं तक समान रूप से नहीं पहुँच पाया है। शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग, वित्तीय सेवाएँ, सूचना प्रौद्योगिकी, बिजनेस प्रोसेस मैनेजमेंट, ई–कॉमर्स, पर्यटन, हॉस्पिटैलिटी, रिटेल तथा डिजिटल उद्यमिता जैसे क्षेत्रों ने महिलाओं के लिए नए अवसरों के द्वार खोले हैं। विशेष रूप से डिजिटल अर्थव्यवस्था और दूरस्थ कार्य (remote work) के बढ़ते विकल्पों ने महिलाओं को घर और कार्य के बीच बेहतर संतुलन स्थापित करने की संभावनाएँ प्रदान की हैं।

इसके बावजूद महिलाओं की बड़ी संख्या अभी भी निम्न उत्पादकता वाले कृषि एवं अनौपचारिक कार्यों में केंद्रित है। इसका कारण केवल कौशल या शिक्षा की कमी नहीं है, बल्कि सामाजिक मानदंड, सुरक्षित परिवहन का अभाव, कार्यस्थलों पर लैंगिक पूर्वाग्रह, वेतन असमानता तथा देखभाल संबंधी जिम्मेदारियों का

असमान वितरण भी है। परिणामस्वरूप, अर्थव्यवस्था के सबसे तेजी से बढ़ते क्षेत्रों में भी महिलाओं की उपस्थिति उनकी जनसंख्या के अनुपात में काफी कम बनी हुई है।

स्पष्ट है कि भारत के लिए वास्तविक चुनौती केवल महिलाओं को श्रम बाजार में लाना नहीं, बल्कि उन्हें उच्च उत्पादकता और बेहतर आय वाले टर्शियरी सेक्टर के अवसरों से जोड़ना है। यदि शिक्षा, कौशल विकास, डिजिटल साक्षरता, उद्यमिता समर्थन और देखभाल संबंधी सार्वजनिक सेवाओं में पर्याप्त निवेश किया जाए, तो महिलाएँ केवल श्रमबल का हिस्सा ही नहीं बनेंगी, बल्कि भारत की ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था की प्रमुख चालक भी बन सकती हैं। इस दृष्टि से महिलाओं की आर्थिक भागीदारी को बढ़ाना केवल लैंगिक समानता का प्रश्न नहीं, बल्कि भारत के आर्थिक वृद्धि का भी प्रश्न है।

यहीं पर एक महत्वपूर्ण वैचारिक गलती सामने आती है। अक्सर महिला श्रमबल सहभागिता को केवल रोजगार का मुद्दा माना जाता है, जबकि वास्तव में यह आर्थिक संरचना, सामाजिक मानदंडों और लैंगिक न्याय का संयुक्त परिणाम है। यदि किसी महिला को नौकरी मिल भी जाए, लेकिन घर के सभी देखभाल कार्यों की जिम्मेदारी उसी पर बनी रहे, तो उसकी आर्थिक भागीदारी टिकाऊ नहीं हो सकती।

भारत के लिए चुनौती केवल अधिक नौकरियाँ पैदा करने की नहीं है, बल्कि ऐसी अर्थव्यवस्था बनाने की है जिसमें महिलाएँ सुरक्षित, सम्मानजनक और उत्पादक तरीके से भाग ले सकें। इसके लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, कौशल विकास, बाल देखभाल सेवाओं का विस्तार, सुरक्षित सार्वजनिक परिवहन, लचीले कार्य अवसर, समान वेतन और लैंगिक संवेदनशील नीतियों की आवश्यकता है। उतना ही महत्वपूर्ण है सामाजिक सोच में परिवर्तन, क्योंकि आर्थिक अवसर तब तक पर्याप्त नहीं होंगे जब तक महिलाएँ उन्हें अपनाने की सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं करतीं। महिला श्रमबल सहभागिता को बढ़ाना केवल महिलाओं का एजेंडा नहीं है, यह भारत के आर्थिक भविष्य का प्रश्न है। विभिन्न अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों ने संकेत दिया है कि यदि महिलाएँ पुरुषों के समान आर्थिक अवसरों में भागीदारी कर सकें, तो राष्ट्रीय आय, उत्पादकता और घरेलू कल्याण में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। दूसरे शब्दों में, भारत अपनी आधी आबादी की क्षमता का पूर्ण उपयोग किए बिना विकसित राष्ट्र बनने की आकांक्षा को पूरी तरह साकार नहीं कर सकता।

मेडागास्कर और भारत की तुलना हमें एक महत्वपूर्ण इनसाइट देती है। केवल उच्च महिला श्रम भागीदारी पर्याप्त नहीं है, यदि वह गरीबी और विवशता से प्रेरित हो। वहीं केवल आर्थिक विकास भी पर्याप्त नहीं है, यदि वह महिलाओं को श्रम बाजार से जोड़ने में असफल रहे। वास्तविक विकास वहाँ होता है जहाँ महिलाएँ न केवल काम करती हैं, बल्कि अपनी पसंद के काम में, सम्मानजनक परिस्थितियों में, उचित आय और निर्णय लेने की शक्ति के साथ भागीदारी करती हैं। अंततः प्रश्न यह नहीं है कि कितनी महिलाएँ कार्यबल में हैं। प्रश्न यह है कि क्या हमारा विकास मॉडल महिलाओं को economic citizens के रूप में स्वीकार करता है। जब तक विकास की प्रक्रिया महिलाओं की क्षमता, आकांक्षाओं और अधिकारों को केंद्र में नहीं रखती, तब तक आर्थिक वृद्धि के आँकड़े प्रभावित करने वाले तो लग सकते हैं, लेकिन वे समावेशी विकास की सच्चाई बयान नहीं कर पाएँगे।

अलग राह

गृहिणियां, जिन्होंने चुनी नई दिशा

आज अदालत गृहिणियों के कामों की कीमत तय कर रही है। उन कामों का मूल्य निकाला जा रहा है जिनके बिना न केवल पूरी सामाजिक व्यवस्था चरमरा जाएगी बल्कि हमारी अर्थवयवस्था की चूलें भी हिल जाएंगी। फिर भी, इस कीमत पर भी सवाल उठ रहे हैं कि क्या वे वाकई इसकी हकदार हैं! जो कोई भी अगर ये कहता है कि गृहिणी होना आसान काम है, उसने शायद कभी गृहिणी का काम नहीं किया है। इस पूरे संदर्भ में ये कहना भी सही होगा कि सदा 'घर के काम' में लगी रहने वाली गृहिणियों में से ही ऐसी कई शख्सियतें भी उभरी हैं जिन्होंने 'घर का काम' करते हुए अपनी नई राह तलाशी है और 'कामकाजी' होने का टैग भी सफलतापूर्वक हासिल किया है। इस लेख में ऐसी गृहिणियों की कहानियां हैं, जिन्होंने घर–परिवार को कुशलतापूर्वक संभाला और साथ ही सफल उद्यमी भी बनीं।

मेनका तिलक राज

मेनका और उनके दिवंगत पति, तिलक राज, को उद्यमिता के मार्ग पर ले जाने वाला पहला बच्चा उनका बच्चा ही था। दंपति अपने बच्चे को अच्छी गुणवत्ता वाले जैविक चावल और अनाज खिलाना चाहते थे, और उन्होंने चावल की विभिन्न किस्मों पर शोध करना शुरू कर दिया। इस प्रक्रिया में, उन्होंने पाया कि चावल की पारंपरिक किस्में जिन्हें वे बचपन से खाते आ रहे थे, अब लुप्त होती जा रही थीं और किसान ज्यादातर उनके अस्तित्व से अनजान थे। मेनका पूछती हैं, "एक तरफ तो हम सरकार से रोजगार सृजित करने और किसानों की मदद करने का आग्रह कर रहे हैं, लेकिन दूसरी तरफ हम आयातित किस्मों के पक्ष में अपनी पारंपरिक किस्मों की अनदेखी कर रहे हैं। इसमें क्या समझदारी है?"

एक शौक के तौर पर शुरू हुआ यह प्रोजेक्ट अब 'अश्वत इको ऑर्गेनिक्स' नाम की कंपनी बन गया है, जिसका प्रबंधन मेनका करती हैं। भारत में जैविक उत्पादों का बाजार तेजी से बढ़ रहा है, और इनकी मांग भी लगातार बढ़ती जा रही है।

नम्रता गोयनका

अपने बेटे वेदांत के जन्म के बाद, इस पूर्व वकील ने गृहिणी बनने का फैसला किया। खाली बैठने के बजाय, उन्होंने घर पर अपने खाली समय का सदुपयोग घर की छत पर सब्जियां उगाने में किया। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा, "वेदांत की परवरिश करते हुए, मुझे अपनी छत की देखभाल करने का समय मिल जाता था। हालांकि यह एक छोटी सी जगह है, फिर भी हम रोजाना के उपयोग के लिए सलाद पत्ता, जड़ी–बूटियां, मूली, हरी सब्जियां, टमाटर और फलियां जैसी सब्जियां उगाते हैं।" अपनी सब्जियां खुद उगाने की रुचि से प्रेरित होकर, नम्रता ने भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान (आईआईएचआर) में स्पॉन कल्टीवेशन पर एक कोर्स में भाग लिया और उसने जो जानकारी सीखी, उसका उपयोग करके उसने अपनी 10/10 फीट की छत पर मशरूम की खेती की। उन्होंने अपने कौशल को निखारने और बाजार की स्थिति का जायजा लेने के लिए पहले छोटे पैमाने पर काम शुरू किया। अपना घर और छत होने से लागत कम हो गई, और अधिकांश उपकरण एक बंद हो रही मशरूम इकाई से खरीदे गए। समय के साथ, वह अपना खुद का उद्यम, 'ग्रीन एप्रन' शुरू करने में सक्षम हुई और वर्तमान में मशरूम के 100 बैग उगाती हैं, जिसमें प्रत्येक किलो सब्सट्रेट से 200–400 ग्राम मशरूम प्राप्त होते हैं।

पेट्रीसिया नारायण

पेट्रीशिया के लिए यह कहावत बिल्कुल सच साबित होती है कि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। 17 साल की उम्र में शादी और 18 साल की उम्र में तलाक के बाद, पेट्रीशिया का बचपन काफी मुश्किलों भरा रहा। उन्हें लंबे समय से खाना पकाने का शौक था, और खुद को नए सिरे से गढ़ने और आर्थिक स्वतंत्रता हासिल करने की जरूरत ने उन्हें इसे पूर्णकालिक पेशे के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित किया।

एक साक्षात्कार में उन्होंने बताया, ''यह मेरे लिए अस्तित्व का सवाल था। मैं जानती थी कि मुझे या तो बोझ के आगे झुक जाना चाहिए या लड़ना चाहिए, इसलिए मैंने अपनी अकेली लड़ाई लड़ने का फैसला किया।''

उन्होंने जैम और स्क्वैश बनाकर बेचना शुरू किया। जब उन्हें अपने खाना पकाने के कौशल पर भरोसा हो गया, तो उन्होंने मरीना बीच पर एक फूड कियोस्क स्थापित किया और धीरे–धीरे चेन्नई के विभिन्न कार्यालयों की कैंटीनों में भोजन की आपूर्ति शुरू कर दी। 1998 में उन्होंने शहर के एक मौजूदा रेस्तरां के साथ साझेदारी की। दुर्भाग्यवश, एक और व्यक्तिगत क्षति ने पेट्रीसिया को दो साल के शोक की अवधि में धकेल दिया।

आखिरकार, वह पहले से कहीं अधिक मजबूत और दृढ़ निश्चयी होकर काम पर लौटी। आत्मविश्वास से लबरेज पेट्रीशिया कहती हैं, "मैंने अपना व्यवसाय सिर्फ दो लोगों के साथ शुरू किया था। अब मेरे रेस्तरां में 200 लोग काम करते हैं। मेरी आमदनी 50 पैसे प्रतिदिन से बढ़कर 2 लाख रुपये प्रतिदिन हो गई है।''

निशा मधुलिका

अगर आप भी नई–नई रेसिपी ट्राई करना पसंद करते हैं, तो इस बात की काफी संभावना है कि आपने कम से कम कुछ ऐसे कुकिंग वीडियो देखे होंगे जिन्होंने निशा मधुलिका को बहुत लोकप्रिय बना दिया है। 2007 में जब उनके बच्चे अपनी–अपनी जिंदगी में आगे निकल गए तो 55 वर्षीय निशा को खालीपन का अनुभव होने लगा। उनके पास कुछ खाली समय था, और किसी तरह उन्होंने खाना बनाना शुरू कर दिया।

उन्होंने ब्लॉग पर रेसिपी अपलोड करके शुरुआत की, और जैसे–जैसे वह लोकप्रिय होता गया, उन्होंने व्लॉगिंग शुरू कर दी। उन्होंने 16 मई, 2011 को अपना पहला कुकिंग वीडियो अपलोड किया था और तब से उन्होंने काफी लंबा सफर तय किया है। निशा आंटीजी के नाम से मशह. ूर निशा मधुलिका के यूट्यूब चौनल पर आज 65 लाख से अधिक सब्सक्राइबर हैं और यह संख्या लगातार बढ़ रही है। कई पुरस्कारों और सम्मानों से नवाजी गई निशा मधुलिका वाकई प्रेरणा का स्रोत हैं!

संदीप रियात

बिजनेस मैनेजमेंट में स्नातक संदीप रियात ने अपना कोर्स पूरा करने के बाद अपने पिता के व्यवसाय में काम करना शुरू कर दिया था। उन्हें जरा भी अंदाजा नहीं था कि जल्द ही पूरे व्यवसाय को चलाने की जिम्मेदारी उन्हीं पर आ जाएगी। अपने पिता के साथ काम करते हुए, उन्हें कंपनी के लिए लिए गए कुछ कर्जों के बारे में पता चला। अंततः, इन सब के तनाव ने ही उनके पिता की जान ले ली और 2004 में हृदय गति रुकने और मस्तिष्क रक्तस्राव के कारण उनका निधन हो गया। इस त्रासदी के बाद संदीप को प्रबंध निदेशक नियुक्त किया गया।

आगे का काम बेहद चुनौतीपूर्ण था, लेकिन उन्होंने यह सब कर दिखाया – बीमार यूनिट को फिर से पटरी पर लाने से लेकर, लेनदारों का कर्ज चुकाने, कई अदालती मामलों और बैंक वसूली एजेंटों से निपटने तक। यह कंपनी अब लाभ कमाने वाली कंपनी है और टाटा मोटर्स, महिंद्रा एंड महिंद्रा आदि जैसे वाहन निर्माताओं से ऑर्डर प्राप्त करती है। व्यापार में योगदान के लिए संदीप को 2011 में पंजाब के मुख्यमंत्री प्रकाश सिंह बादल द्वारा परमान पत्र पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। लुधियाना में उनकी एक फैक्ट्री, दो कार्यालय और 350 से अधिक कर्मचारी हैं। यह सच्ची हिम्मत और दृढ़ संकल्प की कहानी है। (साभार : thebetterindia.com)

हाल परदेस का

घरेलू महिलाएं वे अदृश्य प्रबंधक हैं, जिनका काम ''काम नहीं'' होता

कम या ज्यादा, दुनिया के हर देश में यही स्थिति

महिलाओं के अधिकारों के मामले में अक्सर भारत को पिछड़ा हुआ देश मान लिया जाता है। ये एक पूर्वाग्रह की स्थिति है जबकि वास्तव में केवल इतना ही सच नहीं है। महिलाओं को उनका पूरा अधिकार मिले और समाज तथा अर्थव्यवस्था के हर स्तर पर वे बराबरी से आगे बढ़ें, इसके लिए कई कदम उठाए गए हैं। हाल ही में सुप्रीम कोर्ट के द्वारा महिलाओं के घरेलू काम को सम्मान देते हुए उनका मूल्यांकन किया गया और इसके लिए महिलाओं को 30 हजार रुपए मासिक वेतन का हकदार माना गया। महिला अधिकारों की दिशा में ये एक महत्वपूर्ण कदम है। लेकिन क्या बाकी देशों में भी स्त्रियों के घरेलू कामों को सम्मान की नजर से देखा जाता है? नहीं, कमोबेस हर जगह एक जैसी स्थिति है।

ब्रिटेन

सिंगापुर के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के सेन्हू वांग और चेंग चेंग के शोध में 'अंडरस्टैंडिंग सोसाइटी' का उपयोग करते हुए पाया गया कि ब्रिटेन में विषमलिंगी जोड़ों में महिलाएं घरेलू कार्यों को अधिक संभालने के लिए लचीली कार्य व्यवस्था का उपयोग कर रही हैं, जिससे मौजूदा लैंगिक असमानताएं और मजबूत हो रही हैं। जब पुरुष घर से काम करते हैं, तो घरेलू कार्यों में उनका योगदान काफी हद तक अपरिवर्तित रहता है।

महिलाएं पुरुषों की तुलना में प्रति सप्ताह लगातार 4–8 घंटे अधिक घरेलू काम करती हैं। खरीदारी, खाना बनाना, सफाई और कपड़े धोने जैसे काम मुख्य रूप से 43–71% जोड़ों में महिलाओं द्वारा किए जाते थे, जबकि पुरुषों द्वारा ये काम किए जाने वाले जोड़ों का प्रतिशत 20% से कम था। यह शोध दर्शाता है कि लचीली कार्यशैली मुख्य रूप से इन नियमित कार्यों में महिलाओं पर बोझ बढ़ाती है। पुरुषों द्वारा रिमोट वर्किंग का उपयोग करने से खरीदारी और घर के कामों में उनकी पार्टनर का बोझ थोड़ा कम हो जाता है, लेकिन इससे अन्य घरेलू कामों या बच्चों की देखभाल में पुरुषों की भागीदारी नहीं बढ़ती है।

लगभग 35–54% दंपतियों में बच्चों की देखभाल की मुख्य जिम्मेदारी महिलाओं की थी, जबकि 5% से भी कम दंपतियों में पुरुषों ने यह जिम्मेदारी संभाली। लचीली कार्यशैली अपनाने वाली महिलाओं में बच्चों की देखभाल में लैंगिक असमानता और भी अधिक स्पष्ट थी। छोटे बच्चों (0–4 वर्ष की आयु) की उपस्थिति और अपने साथी की तुलना में महिलाओं की कम व्यक्तिगत आय ने घरेलू काम और बच्चों की देखभाल के कार्यों में महिलाओं के बोझ को काफी हद तक बढ़ा दिया। अध्ययन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि लचीली कार्य व्यवस्थाएं लचीलापन प्रदान करती हैं, लेकिन साथ ही घरों में पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं को भी मजबूत करती हैं, जिससे महिलाओं पर घरेलू बोझ बढ़ जाता है। यह पैटर्न विभिन्न प्रकार की लचीली कार्य व्यवस्थाओं में स्पष्ट है और समय के साथ स्थिर बना रहता है। लेखकों का सुझाव है कि यह घरेलू जिम्मेदारियों में लैंगिक समानता प्राप्त करने के लिए लचीली कार्य नीतियों के साथ–साथ व्यापक सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तनों की आवश्यकता को उजागर करता है।

अमेरिका

हालाँकि अमेरिका में कार्यबल में महिलाओं की हिस्सेदारी लगभग आधी है, फिर भी घरेलू जिम्मेदारियों का बड़ा हिस्सा वही

निभाती हैं। अमेरिका में विवाहित या साझेदार विषमलिंगी जोड़े घरेलू कामों का बंटवारा काफी हद तक पारंपरिक तरीके से ही करते हैं, जिसमें महिला मुख्य रूप से कपड़े धोने (58%), घर की सफाई (51%) और खाना बनाने (51%) की जिम्मेदारी निभाती है। वहीं दूसरी ओर, पुरुष गाड़ी की देखभाल (69%) और बागवानी (59%) में आगे रहते हैं।

कपड़े धोने, सफाई और खाना पकाने के अलावा, 62% घरों में घर की सजावट से जुड़े फैसले भी महिलाएं ही लेती हैं। हालांकि कुछ अन्य कामों में समानता है, लेकिन बच्चों की देखभाल, किराने का सामान खरीदने और बर्तन धोने जैसे दैनिक कार्यों में पतियों की तुलना में महिलाओं की भागीदारी कहीं अधिक होती है। एक ही ऐसा काम है जिसमें पुरुष और महिलाएं समान रूप से नेतृत्व करने की संभावना रखते हैं – बिलों का भुगतान करना। अमेरिका के 37% घरों में, बिलों का भुगतान मुख्य रूप से महिला द्वारा किया जाता है, जबकि 34% घरों में पुरुष द्वारा किया जाता है। पारिवारिक गतिविधियों की योजना बनाना ही एकमात्र ऐसा कार्य है जिसे अधिकांश लोग (52%) समान रूप से साझा करते हैं। जिन घरों में यह कार्य साझा नहीं किया जाता, वहां महिलाओं की जिम्मेदारी पुरुषों (10%) की तुलना में अधिक (37%) होती है।

आधे लोगों का कहना है कि बचत या निवेश से संबंधित निर्णय समान रूप से साझा किए जाते हैं, लेकिन अधिकांश अन्य परिवारों (31%) में, ये निर्णय पुरुष ही लेता है। मध्य–2019 में किए गए तीन सर्वेक्षणों के संयुक्त आंकड़ों पर आधारित ये नवीनतम आंकड़े, गैलप द्वारा विवाहित और साथ रहने वाले जोड़ों से यह पूछने का तीसरा मौका है कि उनके घर के विभिन्न कार्यों को करने की सबसे अधिक संभावना किसकी है। इससे पहले ये सर्वेक्षण 1996 और 2007 में किए गए थे। 2019 के आंकड़ों का विश्लेषण केवल विषमलिंगी जोड़ों (नमूने का 97%) तक सीमित है ताकि समलैंगिक विवाह के कानूनी होने से पहले एकत्र किए गए पिछले आंकड़ों से तुलना करना आसान हो सके। 1996 के बाद से घरेलू कार्यों का वितरण अधिक न्यायसंगत हो गया है।

हालांकि घरेलू कामकाज में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की भागीदारी अधिक बनी हुई है, लेकिन पिछले दो दशकों में कुछ मामलों में यह स्थिति बदली है। 1996 से, किराने की खरीदारी (14 प्रतिशत अंक की गिरावट), कपड़े धोने (12 अंक की गिरावट), खाना पकाने (12 अंक की गिरावट), बर्तन धोने (11 अंक की गिरावट) और सफाई (नौ अंक की गिरावट) जैसे कामों में मुख्य भूमिका निभाने वाली महिलाओं की संख्या में कमी आई है। इन बदलावों के साथ–साथ, मुख्य रूप से इन कार्यों को करने वाले या अपने जीवनसाथी के साथ समान रूप से काम बांटने वाले पुरुषों का प्रतिशत भी बढ़ा है। महिलाओं द्वारा बिलों का भुगतान करने की मुख्य जिम्मेदारी निभाने की संभावना भी कम हो गई है, क्योंकि अधिक महिलाओं का कहना है कि यह काम अब दोनों भागीदारों के बीच समान रूप से साझा किया जाता है। इसी अवधि में, पुरुषों द्वारा बचत या निवेश के बारे में निर्णय लेने की संभावना बढ़ गई है (पांच अंक की वृद्धि), और वे लगातार कार और यार्ड दोनों को अच्छी स्थिति में रखने की सबसे अधिक संभावना रखते हैं।

उपरोक्त निष्कर्ष विवाहित या साथ रहने वाले सभी विषमलिंगी जोड़ों के विचारों पर आधारित हैं। हालांकि, कौन क्या करता है, इस बारे में धारणाएं लिंग के आधार पर काफी भिन्न होती हैं। विशेष रूप से, 12 कार्यों में से आठ कार्यों – बच्चों की देखभाल, घर की सफाई, खाना बनाना, बर्तन धोना, किराने का सामान खरीदना, बिलों का भुगतान करना, पारिवारिक गतिविधियों की योजना बनाना और बचत या निवेश के बारे में निर्णय लेना – के लिए पुरुष और महिलाएं दोनों ही यह कहने की अधिक संभावना रखते हैं कि वे व्यक्तिगत रूप से अपने साथी की तुलना में काम का समान या अधिक हिस्सा करते हैं।

(साभार : news.gallup.com, www.understandingsociety.ac.uk)

इकलौता देश, जहां महिलाओं को मिलती है अधिक सैलरी

पुरुषों की तुलना में महिलाओं को कम सैलरी दिए जाने को Gender Pay Gap (लिंग वेतन अंतर) के तौर पर जाना जाता है। Gender Pay Gap वर्कफोर्स में महिलाओं और पुरुषों की कमाई के बीच का औसत अंतर है। इसे आमतौर पर पुरुषों की कमाई के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और यूरोपीय मुल्कों में भी महिलाएं पुरुषों से ज्यादा सैलरी नहीं पा रही हैं। मगर यूरोप का ही एक देश ऐसा है, जहां महिलाएं सम्मान के साथ ना सिर्फ नौकरी कर रही हैं, बल्कि वे पुरुषों की तुलना में ज्यादा सैलरी पा रही हैं। दरअसल, यूरोस्टैट ने Gender Pay Gap को लेकर एक रिपोर्ट तैयार की है, जिसमें बताया गया है कि वो कौन सा देश है, जहां महिलाएं ज्यादा सैलरी पा रही हैं। इस लिस्ट के मुताबिक, यूरोप का छोटा सा देश लक्जमबर्ग एक ऐसा मुल्क है, जहां महिलाओं को पुरुषों की तुलना में ज्यादा सैलरी मिल रही है। यहां पर Gender Pay Gap में –0.7% का अंतर है, जिसका मतलब है कि लक्जमबर्ग में महिलाएं पुरुषों की तुलना में थोड़ी सी ज्यादा तनख्वाह पा रही हैं। इसकी मुख्य वजह इस देश की जेंडर पॉलिसी और पब्लिक सेक्टर में महिलाओं का रोजगार पाना है, जहां काफी अच्छी सैलरी दी जाती है। लक्जमबर्ग की गिनती दुनिया के सबसे अमीर देशों में भी होती है।

सम्मान कहां है

“हमारे काम को काम ही नहीं मानते लोग”

अदालत से पहले परिवारवालों को कीमत समझ में आनी चाहिए

“मम्मी कल छुट्टी है खाने में क्या स्पेशल है?, मेरे कपड़े कहां है?, चाय कब मिलेगी?, बाहर गेट पर कौन है देखना जरा!, पासबुक कहां रखी है?” अक्सर हमारे घरों में इस तरह के सवालों की झड़ी घर पर रहकर काम करने वाली महिलाओं के लिए लगी रहती है। रोज घर में सबसे पहले जागकर काम पर लगने वाली गृहिणियों की दिनचर्या रात में सबसे बाद तक चलती रहती है। न रविवार की छुट्टी और न ही उनके काम को काम मानना। दरअसल पितृसत्तात्मक समाज में घर का काम एक जिम्मेदारी है जिसे निभाना महिलाओं का कर्तव्य है। इस तरह से एक गृहिणी बिना वेतन के साल दर साल और पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी मेहनत को काम का दर्जा न मिलने के बावजूद श्रम करती रहती है। कामकाजी महिलाओं के लिए तो स्थिति और भी मुश्किल है। कई स्थिति में बिना किसी घरेलू सहायक के महिलाएं पेशेवर ड्यूटी के साथ घर की ड्यूटी साथ निभाती हैं। केवल कुछ महिलाओं, विशेष वर्ग की महिलाओं के लिए घरेलू सहायक की सुविधा उपलब्ध है अन्यथा घर के सारे काम बिना किसी शिकायत और उम्मीद के गृहिणियों के हिस्से है।

महिलाओं को घरेलू कामों के लिए आर्थिक मूल्य दिया जाए, इस दिशा में कभी–कभार बात होती नजर आती है लेकिन सामाजिक ढ़ांचे में यह कभी बहस का विषय नहीं बन पाता है। इस वजह से दुनिया भर में महिलाएं बिना वेतन के कामों में अधिक समय लगाकर भी शक्ति और स्वायत्तता के मामले में पीछे हैं। गृहिणियों के द्वारा किये जाने वाले कामों को सराहना से परे देखा जाता है। दुनिया भर में इस व्यवस्था के तहत महिलाएं घर की सफाई, खाना बनाना, बर्तन धोना, पानी की व्यवस्था करना, परिवार की वित्तीय व्यवस्था संभालना, भोजन से संबंधित वस्तुओं की व्यवस्था करना और लकड़ी लाना, बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल करना जैसे काम करती हैं। कुल पुरुषों में से केवल एक चौथाई ही घरेलू कार्यों में शामिल होते हैं, जबकि महिलाओं में यह आंकड़ा बहुत अधिक है।

54 वर्षीया शशिबाला एक गृहिणी हैं। महिलाओं को घरेलू श्रम के भुगतान पर उनका कहना है, ”यह एक जरूरी सवाल है कि औरतों को घर के काम के बदले कितना पैसा मिलना चाहिए। लेकिन स्थिति ऐसी है कि हमारी पूरी उम्र इस काम में बीत गई लेकिन हम खुद अपनी मेहनत की कीमत के बारे नहीं बता पाएंगे।” इकोनॉमिक टाइम्स में छपी जानकारी के अनुसार, साल 2011 में आर्थिक सहयोग और विकास संगठन के एक अध्ययन के अनुसार, एक औसत भारतीय महिला प्रतिदिन लगभग छह घंटे बिना वेतन वाले कामों में बिताती है। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि भले ही यह काम बिना वेतन के हो, लेकिन गृहिणियों द्वारा किया जाने वाला घरेलू कार्य एक आर्थिक गतिविधि है और इसे राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाना चाहिए। इसे नजरअंदाज करने से हम अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान को कम आंकते हैं।

सम्मान कहां है

यह तो साफ है कि एक गृहिणी केवल घर के कामों तक सीमित नहीं रहती है, बल्कि वह परिवार के सदस्यों की बौद्धिक, भावनात्मक और सामाजिक भलाई को संवारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिन्हें पैसे देकर बाहरी लोगों से करवाना मुश्किल होता है। हालांकि, उन कामों को शामिल किया जा सकता है जिनका प्रत्यक्ष आर्थिक मूल्य लगाया जा सकता है। इनमें घर की सफाई, पूरे परिवार के लिए व्यक्तिगत पसंद के अनुसार तीन समय का भोजन बनाना, बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल करना, बच्चों के होमवर्क और स्कूल प्रोजेक्ट्स में सहायता करना, किराने और दवाइयों की खरीदारी आदि शामिल हैं।

घर के समुचित रख–रखाव का ध्यान रखना, पारिवारिक सदस्यों का ख्याल रखना, सामाजिक आयोजनों की व्यवस्था करना, हर स्तर पर घर की देखभाल करना जैसे काम गृहिणियों का कार्यक्षेत्र हैं। एक गृहिणी को कितना वेतनमान मिलना चाहिए, इसके बारे में बात करते हुए 68 वर्षीया गृहिणी नरेश का कहना है, "औरतों को घर के काम के पैसे! ये तो इस दुनिया में होना नामुकिन सी बात है। हमारे काम को काम ही कहां माना जाता है। ये तो रवायत ही ऐसी है कि औरतें पूरा जीवन अपना घर के कामों में लगा देती है लेकिन उसे मिलता कुछ नहीं है। पैसा तो बहुत दूर की बात है। फिर भी अगर रसोई संभालने तक ही चीजों को देखे तो कम से कम 10,000 रूपये महीना मिलना चाहिए। इस तरह से काम की कीमत समझ आएंगी।"

एक गृहिणी केवल घर के कामों तक सीमित नहीं रहती है, बल्कि वह परिवार के सदस्यों की बौद्धिक, भावनात्मक और सामाजिक भलाई को संवारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिन्हें पैसे देकर बाहरी लोगों से करवाना मुश्किल होता है। शशिबाला कहती हैं, ''घर के काम के मूल्य को ज्यादा नहीं माना जाता है। आप खुद ही देख लो जो घरेलू कामगार के तौर पर काम करती है उनका श्रम ही कितना कम होता है। 500 रूपये महीना बर्तन का करने पर 16–17 रूपये रोज का बनता है और कम से कम एक घर में आधा घंटे से ज्यादा वक्त देकर इतना रूपया प्रतिदिन मिलता है। जब हम महिलाएं घरेलू साहयिका की तलाश में होती हैं तो घरेलू काम के मूल्य को कम आंकने का काम पहले खुद करती हैं।"

साल 2006 में वेनेजुएला ने अपने संविधान के अनुच्छेद 88 में यह प्रावधान किया कि गृहिणियों को न्यूनतम वेतन दिया जाएगा। भारत में भी इस तरह की चर्चा हो चुकी है। 2012 में ही तत्कालीन महिला एवं बाल विकास मंत्री कृष्णा तीरथ ने गृहिणियों को निश्चित वेतन मिले इस विचार को सामने रखा था, लेकिन इसे गंभीरता से नहीं लिया गया। भारत की अदालतों से भी इस तरह की बातें कही जा चुकी हैं। बीते वर्ष सुप्रीम कोर्ट ने घरेलू काम की महत्ता पर कहा था कि एक महिला के घरेलू कामों का मूल्य किसी ऐसे व्यक्ति से कम नहीं है जो दफ्तर से वेतन लाता है। अदालत ने "गृहिणी" के योगदान को अमूल्य करार दिया। हिंदुस्तान टाइम्स में छपी खबर के अनुसार, अदालत ने अपने आदेश में कहा था, "एक गृहिणी की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि परिवार के उस सदस्य की, जिसकी आय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है। यदि गृहिणी द्वारा किए गए कामों को एक–एक करके गिना जाए, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि उसका योगदान उच्च स्तर का और अमूल्य है। वास्तव में, उनके योगदान को केवल आर्थिक दृष्टि से आंकना कठिन है।"

घरेलू श्रम को मान्यता देकर लैंगिक असमानता को खत्म किया जा सकता है। घरेलू श्रम को व्यापक मान्यता देकर दुनिया की आधी आबादी जो घरों को संभालने की थकाऊ दिनचर्या में फंसी है, उनका जीवन स्तर बेहतर होगा। गृहिणियों को वेतन देने के आयामी बदलाव होंगे। पारिवारिक कानूनों में बदलाव होगा, पारिवारिक सरंचना में लैंगिक भूमिकाओं के आधार पर होने वाले भेदभाव को खत्म किया जा सकता है।

भारत में घरेलू कामकाज करने वाली महिलाओं के श्रम का आर्थिक मूल्यांकन एक जटिल और बहस का विषय रहा है। अधिकांश मामलों में, गृहिणियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों को अवैतनिक श्रम के रूप में देखा जाता है और इसे आर्थिक उत्पादन या सकल घरेलू उत्पाद में शामिल नहीं किया जाता। हालांकि, हाल के वर्षों में इस काम के मूल्य को पहचानने और इसे आर्थिक गणना में शामिल करने की मांग तेज हुई है। घरेलू श्रम को मान्यता देकर लैंगिक असमानता को खत्म किया जा सकता है। घरेलू श्रम को व्यापक मान्यता देकर दुनिया की आधी आबादी जो घरों को संभालने की थकाऊ दिनचर्या में फंसी है उनका जीवन स्तर बेहतर होगा। गृहिणियों को वेतन देने के आयामी बदलाव होंगे। पारिवारिक कानूनों में बदलाव होगा, पारिवारिक सरंचना में लैंगिक भूमिकाओं के आधार पर होने वाले भेदभाव को खत्म किया जा सकता है।

वहीं पितृसत्ता व्यवस्था घरेलू श्रम को मान्यता देने के विचार को व्यावहारिक नहीं मानती है और इसे सामाजिक व्यवस्था को खत्म करने वाला मानती है। गृहिणियों को वेतन देने के संभावित अनपेक्षित परिणाम क्या हो सकते हैं। इन सभी पहलुओं पर लगातार बात करने की आवश्यकता है। आखिर कब तक समाज के एक वर्ग को इस तरह की व्यवस्था के तहत हाशिये पर रखा जाएगा।

(साभार : hindi.feminismindia.com)

आजादी

आखिर क्या चाहती हैं घरेलू महिलाएं?

(साभार : www.globalgiving.org)

भारत में लैंगिक समानता को आगे बढ़ाने और समावेशी विकास को बढ़ावा देने के लिए जरूरी है कि कम आय वाले परिवारों की अधिक से अधिक महिलाओं को रोजगार मिले। यदि केवल आर्थिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो कार्यबल की भागीदारी में लैंगिक समानता हासिल करने से भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 27 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है। हालांकि श्रमशक्ति में महिलाओं की भागीदारी में कमी आ रही है। साल 2005 से 2019 के बीच भारत में महिला कार्यबल भागीदारी 45 फीसद से घटकर 27 फीसद हो गई है।

देश में कुल 35.4 करोड़ कामकाजी उम्र की महिलाएं हैं, जिनमें से 12.8 करोड़ शहरों में रहती हैं। इनमें से कुल 20 फीसद ही कार्यबल का हिस्सा हैं। भारत की शहरी कामकाजी उम्र की महिलाओं में 83 फीसद महिलाएं निम्न आय वाले घरों से आती हैं। निम्न आय वाले घरों से आने वाली महिलाओं में जहां 85 फीसद महिलाएं कॉलेज तक नहीं पहुंच पाती हैं, वहीं 50 फीसद महिलाएं अपनी 10वीं तक की पढ़ाई भी पूरी नहीं करती हैं। इसलिए, महिलाओं की भागीदारी को सार्थक रूप से बढ़ाने के लिए, निम्न–आय और निम्न–शिक्षा पृष्ठभूमि की महिलाओं को रोजगार दिए जाने की आवश्यकता है।

भारतीय महिलाओं को आगे बढ़ने से क्या रोक रहा है?

इस सवाल का जवाब देने के लिए, परिवार और समाज की उस भूमिका पर गौर करना जरूरी है जो वह महिलाओं की परवरिश और उनके सामाजिक मेलजोल में निभाता है। महिलाओं की फैसले लेने की क्षमता पारिवारिक प्रतिबद्धताओं और आस्थाओं से जुड़ी होती है। समाज बाधाएं थोपता है और महिलाओं की मानसिकता को भी प्रभावित करता है। श्रम बाजार भागीदारी, वेतनमान में अंतर और इसी तरह का सेकेंडरी डेटा जहां ठीक–ठाक मात्रा में उपलब्ध हैं। वहीं, महिलाओं को आगे बढ़ने से रोकने के पीछे की वजहों

और रोजगार से जुड़ी उनकी प्राथमिकताओं पर बारीक समझ को विकसित करना भी अभी बाकी है और उतना ही जरूरी है।

एफएसजी में 14 राज्यों के 16 शहरों में निम्न आय वर्ग वाले घरों की 6,600 कामकाजी वर्ग की महिलाओं से बात की। हमारा लक्ष्य महिलाओं की आस्थाओं, प्रेरणाओं और रोजगार की प्राथमिकताओं को समझना था। साथ ही, महिलाओं के उस वर्ग की पहचान करना था जो भविष्य में नौकरी करने की तरफ बढ़ सकती थीं। इसके अलावा, कार्यबल में इन महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने में मददगार साबित होने वाली रणनीतियां तय करना भी था।

(साभार : www.krishakjagat.org)

1. महिलाओं को अभी भी काम करने के लिए पुरुषों से अनुमति लेनी पड़ती है

अपने इस सर्वे में हमने पाया कि 84 फीसद महिलाओं को काम करने के लिए अपने परिवारों से अनुमति लेनी पड़ती है। ऐसी तीन में से एक महिला जो न तो काम कर रही हैं और ना ही काम की तलाश में हैं, उनकी इस स्थिति के पीछे का मुख्य कारण अनुमति प्राप्त न कर पाना या फिर समुदाय में ऐसे उदाहरणों की कमी होना है।

2. प्रमुख निर्णयकर्ताओं का दृष्टिकोण केवल सैद्धांतिक रूप में प्रगतिशील होता है न कि व्यावहारिक रूप से

हमने एक महिला के परिवार में प्रमुख निर्णय लेने वाले की पहचान, परिवार के उस सदस्य के रूप में की जिससे उसे नौकरी या व्यवसाय करने के लिए अनुमति लेने की आवश्यकता है। 90 फीसद से अधिक प्रमुख निर्णयकर्ता इस बात से सहमत मिले कि आत्मनिर्भर होने के लिए एक महिला के पास नौकरी होनी चाहिए। साथ ही, उनका यह भी मानना है कि एक कामकाजी महिला परिवार की प्रतिष्ठा बढ़ाने में मददगार साबित हो सकती है। लेकिन बात जब उनके अपने परिवार की महिलाओं की आती है, तब चार में से एक मुख्य निर्णयकर्ता का ऐसा मानना है कि महिलाओं को बिल्कुल भी काम नहीं करना चाहिए। वहीं, बाकी बचे लोगों में 72 फीसद ऐसा मानते हैं कि महिलाओं को केवल अपने घरों से ही काम करना चाहिए या फिर छोटे–मोटे व्यवसाय तक ही सीमित रहना चाहिए ताकि अधिक से अधिक समय घर की देखभाल में लगाया जा सके।

3. महिलाएं परिवार के सहयोग की वजह से नहीं बल्कि अभाव के कारण काम कर रही हैं

कामकाजी महिलाओं वाले घरों में भी, 41 फीसद प्रमुख निर्णयकर्ताओं का मानना है कि घर से बाहर काम करने वाली महिलाएं अपने परिवार और घरों की ठीक से देखभाल नहीं कर पाती हैं। वहीं, 21 फीसद चाहते हैं कि उनके घरों में महिलाएं बिल्कुल भी काम न करें। 77 फीसद का कहना है कि महिलाएं घर से काम करें या कोई छोटा व्यवसाय चला लें जिससे कि वे घर पर अधिक समय दे पाएंगीं। घरेलू कामों और बच्चों की देखभाल का बोझ भी गैर अनुपातिक ढंग से महिलाओं पर ही पड़ता है। कामकाजी और गैर–कामकाजी दोनों ही तरह की महिलाएं प्रतिदिन चार घंटे से अधिक समय अपनी घरेलू जिम्मेदारियों जैसे कि खाना पकाना, साफ–सफाई और कपड़े धोने को पूरा करने में लगाती हैं। इसमें बच्चों की देखभाल, स्कूल का काम करने में उनकी मदद या फिर उन्हें स्कूल छोड़ने और वहां से लाने जैसे काम शामिल नहीं हैं। दूसरी तरफ शहरी पुरुष औसतन प्रतिदिन मात्र 25 मिनट का समय ही अपनी घरेलू जिम्मेदारियों को निभाने में लगाता है।

4. बच्चों की देखभाल महिला की जिम्मेदारी मानी जाती है

महिलाओं का मानना है कि मांओं को घर से बाहर काम करना चाहिए जबकि पुरुष ऐसा नहीं सोचते हैं। हमारे शोध से यह बात सामने आई है कि 88 फीसद महिलाएं मानती हैं कि बच्चे के जन्म के बाद भी एक महिला बाहर जाकर काम कर सकती है। 52 फीसद महिलाएं सोचती हैं कि छह वर्ष से कम आयु वाले बच्चों की मांएं घर से बाहर जाकर काम करने में सक्षम हैं। इसके विपरीत 61 मुख्य निर्णयकर्ताओं की सोच यह है कि छोटे बच्चों (छह वर्ष से कम आयु वाले) की मांओं को घर से बाहर जाकर

काम की तलाश नहीं करनी चाहिए।

5. अधिकांश शहरी माताएं पैसे देकर डे केयर की सुविधाएं नहीं लेना चाहती हैं

12 वर्ष या उससे कम उम्र के बच्चों के लिए, एक फीसद से कम कामकाजी मांओं (वर्तमान या पूर्व) ने सशुल्क चाइल्डकेयर सेवाओं का उपयोग किया है। अपने काम की प्रकृति के बावजूद, 89 फीसद माताएं सशुल्क डे–केयर पर विचार करने को तैयार नहीं हैं। इसलिए कि उनमें से 41 फीसद मांओं का ऐसा विश्वास है कि बच्चों की देखभाल करना उनका अपना काम है। 38 फीसद महिलाएं डे–केयर सेवाओं पर भरोसा नहीं करती हैं। इसके अलावा, 75 फीसद प्रमुख निर्णयकर्ताओं ने कहा कि वे बच्चों को पेड डे–केयर में भेजने की अनुमति नहीं देंगे।

इसके पीछे सामर्थ्य की कमी कोई बड़ी वजह नहीं है। केवल 15 फीसद मांओं और एक फीसद प्रमुख निर्णयकर्ताओं ने सशुल्क डे–केयर का विकल्प न चुनने के कारण सामर्थ्य की कमी का हवाला दिया। इन 15 फीसद में से आधे लोगों का कहना था कि वे अपने बच्चों को आंगनबाड़ी नहीं भेजना चाहते हैं। आंगनबाड़ी सरकार द्वारा दिन में कुछ सीमित घंटों के लिए बच्चों के लिए दी जाने डे–केयर की सुविधा है। इसके पीछे असुरक्षित माहौल और परिवार की तरह का देखभाल न होने जैसे कारण हैं।

6. महिलाओं को लैंगिक व्यवसायों में प्रशिक्षित किया जाता है

30 फीसद से अधिक महिलाओं ने एक स्तर तक व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त किया है। वहीं 85 फीसद प्रशिक्षित महिलाओं ने सिलाई या टेलरिंग, सौंदर्य या मेकअप सेवाओं, और मेहंदी लगाने जैसे लैंगिक व्यवसायों में प्रशिक्षण लिया है। निम्न आय और निम्न शिक्षा पृष्ठभूमि की कुछ महिलाएं गैर पारंपरिक नौकरियों के लिए इच्छुक होती हैं। दो में से एक महिला ऐसे वातावरण में काम करने में सहज है जहां 90 फीसद पुरुष हैं। 42 फीसद महिलाएं व्यक्तिगत रूप से ग्राहकों को उत्पाद बेचने को तैयार हैं। वहीं 72 फीसद का मानना है कि वे 15 किलोग्राम तक का भार उठा सकती हैं।

7. महिलाएं व्यवसाय करने से अधिक नौकरी को तरजीह देती हैं

कम आय वाले परिवारों में अधिकांश प्रमुख निर्णय निर्माताओं को लगता है कि उनके अपने परिवारों में महिलाओं को छोटे–मोटे व्यवसाय करने चाहिए जिससे कि वे घर में अधिक समय दे पाएंगी। जबकि 59 प्रतिशत महिलाएं उद्यमिता से अधिक नौकरी को तरजीह देती हैं और दो तिहाई महिलाएं ऐसी हैं जो काम करना पसंद करती हैं। इसके अलावा, 93 फीसद महिलाएं दैनिक वेतन से अधिक निश्चित वेतन को प्राथमिकता देती हैं।

बाधाओं के बावजूद महिलाएं काम करना चाहती हैं

शोध कहता है कि इन बाधाओं के बावजूद 33 फीसद गैर कामकाजी महिलाएं काम करने की इच्छुक हैं। वहीं दो में से एक महिला या तो नौकरी कर रही है या नौकरी की तलाश कर रही है। इसके अलावा, 64 फीसद महिलाओं का दृढ़ विश्वास है कि आत्मनिर्भर होने के लिए काम करना जरूरी है। 52 फीसद कामकाजी महिलाओं का कहना है कि उन्हें काम करने में मजा आता है, और 90 फीसद कामकाजी महिलाओं का मानना है कि नौकरी करना सही है।

आज अधिक संख्या में महिलाएं शिक्षित हो रही हैं। उन्हें अपनी क्षमताओं पर भरोसा है। 90 फीसद से अधिक महिलाओं के काम करने या नौकरी की तलाश के पीछे का प्रमुख कारण अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक खर्च उठाना है। महिलाएं आर्थिक कारणों से काम करना शुरू करती हैं, लेकिन आर्थिक आवश्यकता से परे भी वह काम करना जारी रखना चाहती हैं। केवल 20 फीसद महिलाओं ने ही कहा कि आर्थिक तंगी नहीं होने की स्थिति में वे काम करना बंद कर देंगी। वहीं, 78 फीसद रिटायरमेंट की उम्र में पहुंचने तक या स्वास्थ्य ठीक रहने तक काम करने की इच्छुक हैं। नौकरी की तलाश कर रही महिलाओं में भी केवल 32 फीसद ने कहा कि आर्थिक तंगी समाप्त हो जाने की स्थिति में काम ढूंढ़ना बंद कर देंगी।

मददगार साबित न होने वाले सामाजिक मानदंड, बच्चों की देखभाल से जुड़े गहरे मानसिक मॉडल और प्रचलित पूर्वाग्रह महिलाओं की नौकरी में काम करने की प्रवृत्ति को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। लेकिन इन कारकों से सभी महिलाएं समान रूप से प्रभावित नहीं होती हैं। बिन बच्चों वाली महिलाओं, बड़े उम्र के बच्चों वाली महिलाओं और कामकाजी महिलाओं के सम्पर्क में रहने वाली महिलाओं में काम या नौकरी करने की उच्च प्रवृति पाई जाती है।

हम इन बाधाओं को कैसे दूर कर सकते हैं?

अनगिनत हितधारकों की ओर से किया गया एक ठोस प्रयास महिलाओं को शामिल करने वाली अधिक उपयुक्त इकोसिस्टम बना सकता है। लोगों, खासतौर पर पुरुषों को काम पर महिलाओं की जरूरतों पर धारणा बनाने से बचना चाहिए और इसकी बजाय उनकी प्रमुख और बदल रही जरूरतों को समायोजित करने के लिए लचीला होना चाहिए। कंपनियों को जेंडर–डाइवर्स वर्कफोर्स के व्यावसायिक लाभों को साझा करके पूर्वाग्रहों या कथित जोखिमों पर बात करनी चाहिए। सरकारें मातृ अवकाश को पैतृक अवकाश से बदलकर नीतियों को अधिक समावेशी बना सकती हैं।

(साभार : hindi.idronline.org
लेखक विक्रम जैन एफएसजी के प्रबंध निदेशक हैं)

अच्छी खबर

तो 22 लाख करोड़ देनी होगी सैलरी

भारत में करीब 21 करोड़ से अधिक महिलाएं बिना किसी वेतन के घरेलू कामकाज और अपने परिवार की देखभाल करती हैं। इन घरेलू कार्यों का यदि वेतन दिया जाए तो लगभग 22.7 लाख करोड़ रुपये की रकम होगी। हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने भी पहली बार गृहिणियों (होममेकर्स) द्वारा बिना पैसे के किए जाने वाले घरेलू कामकाज के महत्व को स्वीकारा है। शीर्ष अदालत ने घरेलू महिलाओं को राष्ट्र निर्माता भी कहा है। भारत सरकार के सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय द्वारा जारी 'टाइम यूज सर्वे' (जनवरी–दिसंबर 2024) की रिपोर्ट से पता चलता है कि महिलाएं बिना वेतन वाले घरेलू कामकाज और देखरेख पर रोजाना 7 घंटे खर्च करती है। रिपोर्ट के अनुसार, घरेलू कामकाज जैसे साफ–सफाई, खाना बनाना, कपड़े धोना, जैसे कामों के बदले महिलाओं को कोई पैसा नहीं मिलता है। एक शोध के मुताबिक, भारत में करीब 21 करोड़ से अधिक महिलाएं बिना किसी वेतन के घरेलू कामकाज और अपने परिवार की देखभाल करती हैं। यदि महिलाओं को इन कार्यों के बदले वेतन देना पड़े तो यह लगभग 22.7 लाख करोड़ आंका गया है, जो कि देश के कुल सकल घरेलू उत्पाद का 7.5 फीसदी है। भारतीय स्टेट बैंक की रिपोर्ट के मुताबिक, महिलाओं द्वारा किए जाने वाले बिना वेतन वाले घरेलू और देखभाल के कामों की सालाना आर्थिक कीमत का अनुमान 22.7 लाख करोड़ लगाया गया है।

रिपोर्ट के मुताबिक, उम्र बढ़ने के साथ महिलाओं पर बिना पैसे वाले घरेलू कामकाज और बच्चों–बुजुर्गों की देखभाल के कामों का बोझ बढ़ता जाता है। 15 से 59 साल की उम्र की महिलाएं ऐसे कामों में रोजाना 305 मिनट बिताती हैं। 2019 में यह समय 315 मिनट था, अब इसमें थोड़ी कमी आई है। इसी उम्र समूह के 41 फीसदी महिलाएं घर के सदस्यों की देखभाल में शामिल थीं, जबकि पुरुषों में यह आंकड़ा महज 21.4 फीसदी था।

(साभार : www.livehindustan.com)

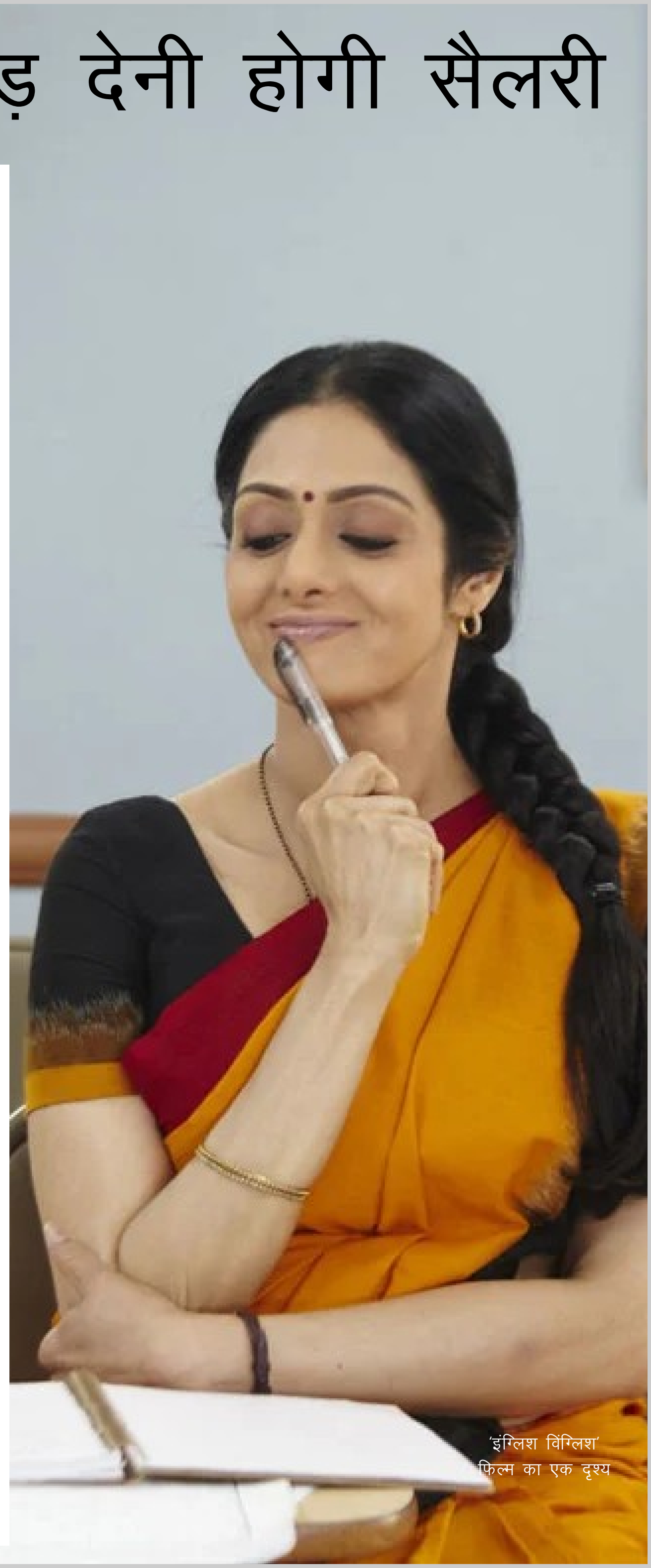

'इंग्लिश विंग्लिश' फिल्म का एक दृश्य

वेतन असमानता

स्त्रियों के त्याग पर टिकी होती है पुरुषों की कमाई, फिर भी...

''मैं ज्यादा कमाता हूं, घर का काम क्यों करूं''

कुछ दिनों पहले इंटरनेट पर Quora पर एक सवाल आया, ''मेरी होने वाली पत्नी की सालाना आय 4.5 लाख रुपये है और मेरी आय 20 लाख रुपये है। उसने कहा कि शादी के बाद वह नौकरी नहीं छोड़ेगी क्योंकि गृहिणी बनकर वह ऊब जाएगी। वह चाहती है कि मैं घर के कामों में उसकी मदद करूं। मैंने उससे साफ–साफ कह दिया कि ऐसे लड़के से शादी करो जिसकी सालाना आय 4.5 लाख रुपये हो, वह तुम्हारी हर बात मानेगा। क्या मैंने कुछ गलत कहा?''

यह सज्जन जानना चाहते हैं कि आखिर उनसे घरेलू काम करने की उम्मीद क्यों की जानी चाहिए, जबकि वे परिवार के 'उच्च आय वाले' होने के नाते पहले से ही अपने हिस्से के पारिवारिक कर्तव्यों को पूरा करते हैं। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि वे अपनी होने वाली पत्नी की कम वेतन वाली नौकरी को अनावश्यक और बेकार समझते हैं। और उनका दृढ़ विश्वास है कि अधिक कमाने वाला होने के नाते उन्हें कम कमाने वालों से, जिनमें उनकी मंगेतर भी शामिल हैं, श्रेष्ठ महसूस करने का अधिकार है।

लैंगिक वेतन अंतर

जो लोग जोर–शोर से यह कहते रहते हैं कि 'वेतन असमानता एक मिथक है', उनके लिए ये एक सच्चाई है। यह बिल्कुल भी मिथक नहीं है। ऑनलाइन भर्ती कंपनी Monster.com के मॉन्स्टर सैलरी इंडेक्स के अनुसार, भारत में लैंगिक वेतन अंतर 27 प्रतिशत तक है, जहां पुरुषों का औसत सकल प्रति घंटा वेतन 288.68 रुपये है, वहीं महिलाओं का प्रति घंटा वेतन 207.85 रुपये है। यानी, समान पद के लिए एक ही संगठन में प्रतिस्पर्धा करने वाली महिलाओं की तुलना में पुरुषों को अक्सर अधिक वेतन प्रस्ताव मिलते हैं। मॉन्स्टर इंडिया के प्रबंध निदेशक संजय मोदी के अनुसार, लैंगिक वेतन अंतर के पीछे का कारण महिला कर्मचारियों की तुलना में पुरुष कर्मचारियों को दी जाने वाली प्राथमिकता है। मातृत्व अवकाश और घरेलू कर्तव्यों जैसे विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक कारकों के कारण पुरुष कर्मचारियों को पर्यवेक्षी पदों पर अधिक बार पदोन्नत किया जाता है, जो आमतौर पर विवाहित महिलाओं से अपेक्षित होते हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी, कानून, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा या वित्त–कोई भी उद्योग चुन लीजिए, आपको पता चलेगा कि महिलाओं को कम वेतन मिलता है। क्रिकेटरों में भी यही हाल है। महिला क्रिकेट टीम ने हाल ही में भारत का प्यार और प्रशंसा हासिल की है, लेकिन पुरुषों की तुलना में उन्हें न के बराबर वेतन मिलता है। महिला टीम में ग्रेड ए और ग्रेड बी की खिलाड़ियों को क्रमशः 15 लाख रुपये और 10 लाख रुपये का वार्षिक वेतन मिलता है। वहीं, पुरुष टीम में ग्रेड ए और ग्रेड बी के खिलाड़ियों को क्रमशः दो करोड़ रुपये और एक करोड़ रुपये का वार्षिक वेतन मिलता है। एक्सेंचर रिसर्च की एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार, लैंगिक वेतन अंतर वास्तव में 27 प्रतिशत से भी अधिक है, यानी 67 प्रतिशत तक।

अध्ययन के अनुसार, यह असमानता अनेक कारणों का परिणाम है, जैसे कि वरिष्ठ पदों पर पुरुषों की अधिकता (भारत में प्रचलित दकियानूसी प्रथाओं के कारण अधिकांश महिलाओं को विवाह के बाद करियर बनाने का अवसर नहीं मिलता), पुरुषों की अक्सर बेहतर शिक्षा (पितृसत्तात्मक समाज के शिकंजे के कारण महिलाओं को उच्च शिक्षा में समान अवसर नहीं मिलते) और कार्य समय (भारत में महिलाओं के लिए इतना असुरक्षित माहौल है कि वे देर रात तक काम भी नहीं कर सकतीं)। 'जेंडर, वर्क एंड पावर रिलेशंस' की लेखिका और नई दिल्ली स्थित थिंक टैंक सेंटर फॉर सोशल रिसर्च की निदेशक रंजना कुमारी ने कहा, ''महिला रोजगार को लेकर सांस्कृतिक वर्जनाएं शहरों में इस समस्या को और भी गंभीर बना देती हैं। यहां तक कि अगर महिलाएं उच्च शिक्षित भी हों, तो भी ससुराल वाले और पति उन्हें घर से बाहर कोई भी काम करने की अनुमति नहीं देते।'' उन्होंने आगे कहा, ''महिलाएं अच्छी नौकरी पाने के लिए नहीं, बल्कि अच्छा दूल्हा पाने के लिए स्नातक की उपाधि

प्राप्त कर रही हैं। इसलिए, निष्कर्षतः, श्रीमान जो अधिक कमाते हैं, संभवतः ऐसा करते हैं, लेकिन किसी अंतर्निहित कौशल या प्रतिभा की श्रेष्ठता के कारण नहीं, बल्कि संभवतः उन अनुचित सामाजिक संरचनाओं के कारण जो महिलाओं की सफलता में हर कदम पर बाधा डालती हैं।''

जातिगत भूमिकायें

भारत की पितृसत्तात्मक मानसिकता ने यह सुनिश्चित कर दिया है कि हम सभी यह मानकर बड़े हों कि घरेलू काम महिलाओं का काम है और कमाना पुरुषों का। अक्सर लोग यह बेतुकी धारणा फैलाते हैं कि पुरुष 'शिकारी–संग्रहकर्ता' थे, इसलिए कमाना उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है और महिलाएं 'देखभाल करने वाली' थीं, इसलिए उन्हें घर पर रहना चाहिए। बेशक, ये 'विचारक' एक पल के लिए भी यह नहीं सोचते कि मनुष्य का विकास हुआ है। नहीं। घरेलू कामकाज महिलाओं का स्वाभाविक क्षेत्र नहीं है। दुख की बात है कि बहुत से लोग अब भी इसके विपरीत मानते हैं। इंडियाना विश्वविद्यालय की डॉक्टरेट छात्रा नताशा क्वाडलिन, जिन्होंने घरेलू काम में असमानता पर एक अध्ययन किया, ने कहा, ''घरेलू काम पर किए गए अधिकांश शोध से पता चलता है कि दंपति घरेलू काम को अलग–अलग आधारों पर बांटते हैं। उदाहरण के लिए, कम कमाने वाले साथी अधिक कमाने वाले साथियों की तुलना में अधिक घरेलू काम करते हैं।''

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की एक टीम ने पिछले 50 वर्षों में 19 देशों में घरेलू कामों में अंतर के परिवर्तनों का अध्ययन किया। यद्यपि सभी देशों में घरेलू कामों में लगने वाले समय के संदर्भ में, महिलाओं और पुरुषों द्वारा किए गए घरेलू कामों की मात्रा में अंतर (लिंग के आधार पर घरेलू कामों में अंतर) में भारी गिरावट देखी गई है, फिर भी घरेलू कामों में अंतर बना हुआ है, और इसमें पुरानी लैंगिक भूमिकाओं की बड़ी भूमिका है।

विश्व आर्थिक मंच की 2014 की एक रिपोर्ट में बताया गया है कि भारत में घरेलू कामों में लैंगिक असमानता उन सभी देशों की तुलना में सबसे अधिक है जिनके आंकड़े उपलब्ध हैं। 2015 में नीलसन इंडिया द्वारा भारतीय परिवारों पर किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि दो–तिहाई से अधिक भारतीय महिलाओं का मानना है कि घर में पुरुषों और महिलाओं के बीच असमानता मौजूद है, जहां पुरुष घरेलू कामों में मदद नहीं करते हैं। नवंबर 2014 में मुंबई, दिल्ली, चेन्नई, हैदराबाद और बेंगलुरु में किए गए पांच शहरों (1,000 लोगों) के सर्वेक्षण में भी इसी तरह की भावनाएं सामने आईं। सर्वेक्षण के अनुसार, 70 प्रतिशत विवाहित भारतीय महिलाओं का मानना है कि वे अपने पतियों के साथ बिताए गए समय की तुलना में घरेलू कामों में अधिक समय व्यतीत करती हैं। महिलाओं ने पुरुषों की तुलना में अधिक तनाव का अनुभव करने की शिकायत की– लगभग 85 प्रतिशत कामकाजी भारतीय महिलाओं का मानना है कि वे दोहरी भूमिका निभाती हैं, एक कार्यालय में और दूसरी घर पर।

भारत में महिलाएं आज भी किसी न किसी रूप में विशेषाधिकार प्राप्त पुरुषों द्वारा हाशिए पर धकेली जा रही हैं। Quora पर उठाए गए प्रश्न इस बात का प्रमाण हैं कि 'पुरुष महिलाओं से बेहतर हैं' वाली सोच आज भी पुरुषों में व्याप्त है। इसे रोकने का एकमात्र तरीका है बदलाव में सक्रिय रूप से भाग लेना। चाहे घरेलू काम हो या पेशेवर क्षेत्र, महिलाएं अधिक काम करती हैं और कम कमाती हैं।

मातृत्व को ही स्त्री का एकमात्र उद्देश्य मानकर, 'देखभालकर्ता' की धारणा ने ऐतिहासिक रूप से महिलाओं के विकल्पों को सीमित कर दिया है। लेकिन यह धारणा हमारे सामूहिक भ्रम का हिस्सा बनकर नहीं रहनी चाहिए। अब समय आ गया है कि हम इस सोच को बदलें।

(आलेख साभार : www.dailyo.in,
फोटो : pinterest/newsclick.in)

5 साल में 2 करोड़ महिलाओं ने छोड़ी नौकरी

कानूनी रूप से कार्ययोग्य आयु के 90 करोड़ भारतीयों में से 50% से अधिक, विशेषकर महिलाएं, सही प्रकार का रोजगार न मिलने से उत्पन्न बढ़ती निराशा के कारण नौकरी नहीं करना चाहतीं। यह चौंकाने वाला आंकड़ा मुंबई स्थित एक निजी शोध फर्म, सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी (सीएमआईई) द्वारा जारी किया गया है।

ब्लूमबर्ग ने सीएमआईई के आंकड़ों का हवाला देते हुए बताया कि 2017 और 2022 के बीच लगभग 2 करोड़ महिलाएं कार्यबल से गायब हो गईं, जिससे योग्य आबादी का केवल 9% ही कार्यरत या नौकरी की तलाश में रह गया। इसी अवधि में, कुल श्रम दर 46% से घटकर 40% हो गई। ये आंकड़े ऐसे समय में सामने आए हैं जब भारत अपनी युवा श्रमशक्ति पर भरोसा कर रहा है, जो अवसरों की कमी के कारण तेजी से निराश हो रही है। हालांकि पहले के सीएमआई आंकड़ों से पता चला था कि बेरोजगारी दर फरवरी 2022 के 8.10% से घटकर मार्च 2022 में 7.6% हो गई थी, लेकिन कानूनी रूप से काम करने योग्य आयु के भारतीयों की भारी संख्या को देखते हुए, यह प्रतिशत बहुत अधिक है।

मार्च 2022 में हरियाणा में बेरोजगारी दर सबसे अधिक 26.7% दर्ज की गई थी, इसके बाद राजस्थान और जम्मू और कश्मीर में 25%, बिहार में 14.4%, त्रिपुरा में 14.1% और पश्चिम बंगाल में 5. 6% थी।

CMIE के नवीनतम आंकड़ों से पता चलता है कि रोजगार सृजन की समस्या, विशेष रूप से श्रम बल छोड़ने वाली महिलाओं की बढ़ती संख्या को देखते हुए, एक गंभीर खतरे में तब्दील हो रही है। जनसंख्या का 49% हिस्सा होने के बावजूद, महिलाएं आर्थिक उत्पादन में केवल 18% का योगदान देती हैं, जो वैश्विक औसत का लगभग आधा है। सीएमआईई के महेश व्यास ने ब्लूमबर्ग को बताया "महिलाएं श्रम बल में उतनी संख्या में शामिल नहीं होतीं क्योंकि नौकरियां अक्सर उनके अनुकूल नहीं होतीं। उदाहरण के लिए, पुरुष अपनी नौकरी पर पहुंचने के लिए ट्रेन बदलने को तैयार रहते हैं, महिलाएं ऐसा करने के लिए कम ही इच्छुक होती हैं। यह बहुत बड़े पैमाने पर हो रहा है।"

जनवरी में प्रकाशित ''भारत की घटती महिला कार्यबल'' शीर्षक वाली सेंटर फॉर इकोनॉमिक डेटा एंड एनालिसिस और सीएमआईई की एक संयुक्त रिपोर्ट में कोविड–19 से पहले और महामारी के बाद के स्तरों की तुलना करते हुए दिखाया गया कि 2021 में महिलाओं का राष्ट्रीय औसत मासिक रोजगार 2019 की तुलना में 6.4% कम था।

> **''महिलाएं श्रम बल में उतनी संख्या में शामिल नहीं होतीं क्योंकि नौकरियां अक्सर उनके अनुकूल नहीं होतीं।''**

शहरी क्षेत्रों में महिलाओं के औसत मासिक रोजगार में भी भारी गिरावट आई है, जहां 2019 की तुलना में 22.1% कम महिलाएं कार्यरत हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि 2021 में 2019 और 2020 दोनों की तुलना में कम महिलाओं ने सक्रिय रूप से नौकरियों की तलाश की, और 2020 में यह गिरावट अधिक तीव्र थी।

वर्ष 2019 की तुलना में 2021 में चार राज्यों में महिलाओं के औसत मासिक रोजगार में 50% से अधिक की गिरावट देखी गई– तमिलनाडु (–50.9%), गोवा (–56%), जम्मू और कश्मीर (तब एक राज्य, –61%) और पंजाब (–57.9%)।

भारत में 2021 में महिलाओं का औसत मासिक रोजगार 2020 की तुलना में 4.9% अधिक था, लेकिन 2019 की तुलना में 6.4% कम था। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में यह अंतर अधिक था। जनवरी में जारी रिपोर्ट के अनुसार, 2021 में शहरी भारत में महिलाओं का औसत रोजगार 2020 की तुलना में 6.9% और महामारी से पहले के वर्ष 2019 की तुलना में 22.1% कम था। हालांकि, ग्रामीण भारत में 2021 में महिलाओं का रोजगार 2020 की तुलना में 9.2% अधिक था और 2019 की तुलना में केवल 0.1% कम था।

शहरी भारत में 2019 की तुलना में 2021 में रोजगार प्राप्त करने वाली महिलाओं की संख्या में 22.1% की कमी आई। इसके अलावा, 2021 में नौकरी की तलाश करने वाली महिलाओं की संख्या में भी वृद्धि देखी गई। जहां 2019 में लगभग 95 लाख महिलाएं हर महीने सक्रिय रूप से नौकरी की तलाश कर रही थीं, वहीं 2020 में यह संख्या घटकर 83 लाख और 2021 में मात्र 65 लाख रह गई। यह प्रवृत्ति शहरी और ग्रामीण भारत दोनों में देखी गई।

जून 2019 में जारी 2017–18 के आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण में कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी में उल्लेखनीय गिरावट देखी गई। कामकाजी उम्र की महिलाओं (15 वर्ष या उससे अधिक आयु की) में से केवल लगभग 22% ही लाभकारी रूप से कार्यरत थीं, जबकि राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के 68वें दौर के सर्वेक्षण के अनुमान के अनुसार, 2011–12 में यह आंकड़ा लगभग 31% था।

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की मार्च 2022 में आई एक रिपोर्ट में कहा गया था कि महिलाओं के लिए न्यूनतम विवाह आयु को बढ़ाकर 21 वर्ष करने की केंद्र सरकार की योजना उन्हें कार्यबल में शामिल होने के लिए अधिक प्रेरित कर सकती है क्योंकि वे उच्च शिक्षा और करियर का विकल्प चुन सकती हैं। (साभार : www.newsclick.in)

A CSR Project
of
Coal India Limited

A MAHARATNA COMPANY

5 DECADES OF UNEARTHING ENERGY

EQUITY FOUNDATION
A Forum for Woman and Child

123-A, Patliputra Colony
Patna-800013
Call @ 7004227803/6207092051
Email- equityasia@gmail.com

कुशल

Promoting Digital Literacy Among The Underprivileged Students

(FREE Computer classes (10+2 onwards)

www.emanjari.com

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13

equityasia@gmail.com
www.emanjari.com
06122270171
6207092051
7979772023

RNI Title Code: BIHBIL02442

© इक्विटी फाउंडेशन